भवन्स

नवनीत

अक्टूबर 2020

30 रुपये

समय ... / साहित्य ... / संस्कृति ...

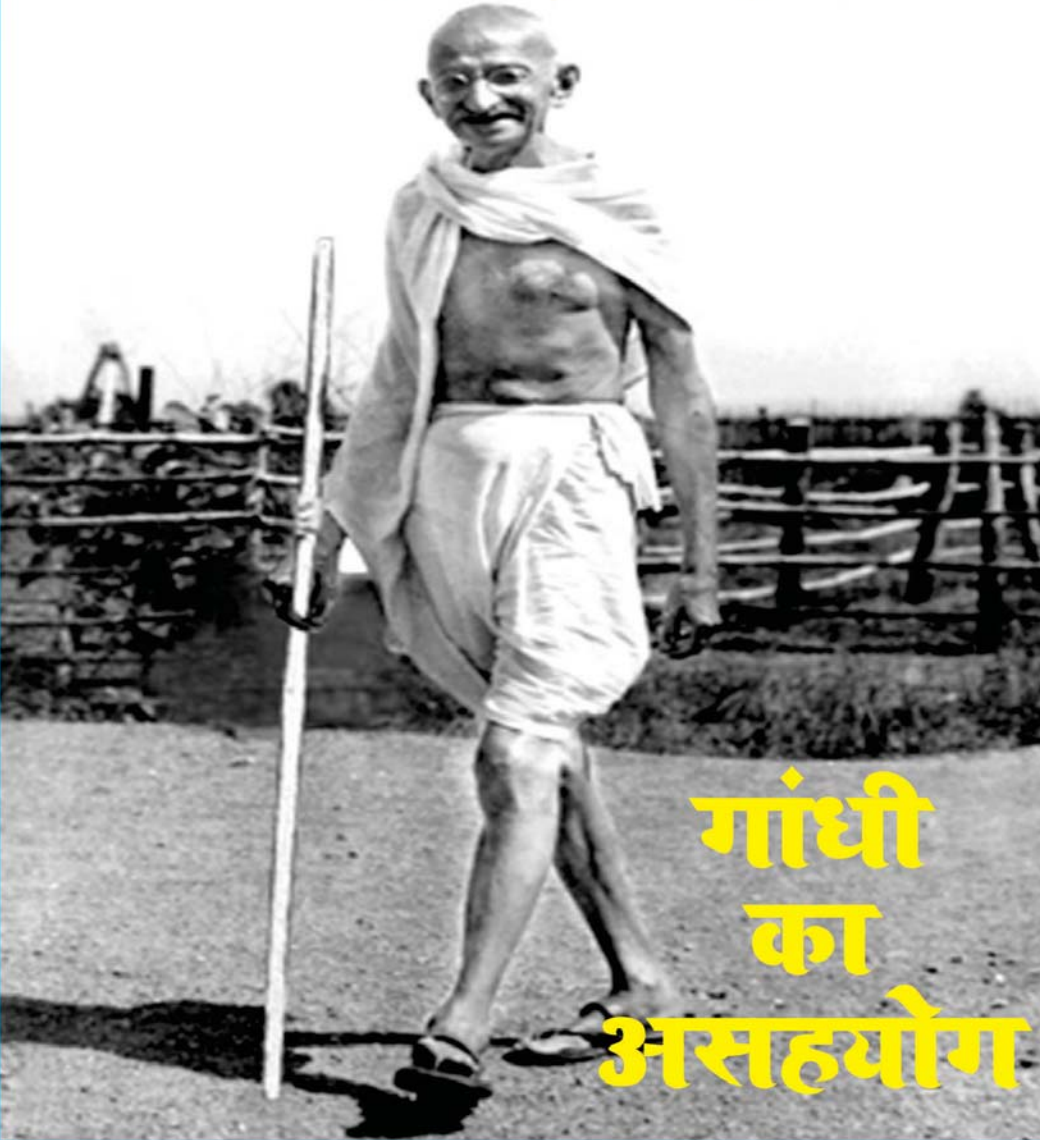

गांधी का असहयोग

VISIT…

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम

HP

Delivering Happiness

100 वर्षों से भी अधिक, देश को ऊर्जामय करते हुए!

Fuelling the Nation for over 100 years!

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड
Hindustan Petroleum Corporation Limited

www.hindustanpetroleum.com

/hpcl | /hpcl | /hpcl

हिंदी-हिंदुस्तानी

गांधीजी एक सृजनात्मक आदर्शवादी हैं. वे अपनी सारी शक्तियों को केंद्रीकृत करके आत्म-संतोष प्राप्त करते हैं ताकि उनका अनुभव किया जा सके. वे चाहते हैं कि भारत एक राष्ट्र के रूप में शक्तिशाली बने. उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता के ताने-बाने को मज़बूत बनाने के लिए अथक प्रयास किया है. हिंदुस्तानी के माध्यम से भी वे इस ताने-बाने को मज़बूत बनाना चाहते हैं. वे एक ऐसी राह बता रहे हैं जिस पर चलकर हिंदू-मुसलमान दोनों लिपियां सीख कर एकता स्थापित कर सकते हैं. मैं स्वयं भी हिंदी-हिंदुस्तानी के अलावा और किसी राष्ट्र-भाषा की कल्पना नहीं कर सकता. 1934 में जब गांधीजी ने भारतीय साहित्य परिषद की स्थापना की थी, तब उन्होंने 'हिंदी-हिंदुस्तानी' शब्द दिया था. यह नया शब्द नहीं है. सन् 1892 में भूदेव मुखर्जी ने यह शब्द काम में लिया था. यही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है.

(कुलपति के.एम. मुनशी भारतीय विद्या भवन के संस्थापक थे)

सचेत मन और स्व

अपनी सभी भावनाओं का बोध हमें चेतन मन से ही होता है. चेतना का यह हिस्सा ही विविधताओं का विषय है. इसकी ग्रहणशीलता और चेतावनी प्रतिक्रियाओं की शक्ति हर क्षेत्र में अलग-अलग होती है. चेतना की विभिन्न अवस्थाएं हैं, लेकिन स्व की नहीं. यह स्व अबाधित कार्य करता है, भले ही चेतना की अभिव्यक्तियां और इसके परिणामी व्यवहार शरीर के अलग-अलग अंगों के अनुसार एक ही शरीर में परिवर्तन से गुजरते हैं. शरीर की अपनी अवस्थाएं हैं; प्रकट चेतना के अपने चरण होते हैं, लेकिन स्व अविभाजित रहता है– अपरिवर्तित और तटस्थ.

आइए हम चेतन मन की अवस्थाओं का विश्लेषण करें और इनको अपनी-अपनी सतर्कता और बोध की स्थिति से संबंधित करें, फिर प्रत्येक अवस्था के संबंध में स्व की प्रकृति की खोज करें. अपनी सजग जागृत अवस्था में मन सतर्क होता है. सतर्क मन शरीर के अंगों के व्यवहार के माध्यम से प्रतिक्रिया करता है. आत्म प्रतिक्रियाओं के माध्यम से बोधगम्य व्यवहार प्रकट करता है और परिणामस्वरूप सुख और दुख की भावनाएं प्रभावी होती हैं.

दूसरी स्थिति है– निद्रावस्था. जब चेतना सुप्त होती है, और शरीर के अंग अनुभव करना और अभिव्यक्त करना बंद कर देते हैं, तो शरीर निष्क्रिय हो जाता है और सोते समय शिथिल रहता है. लेकिन स्व का क्या होता है? क्या

यह भी सोता है? नहीं, स्व अभी भी जागृत रहता है और स्वप्न-क्रियाओं में परिलक्षित होता है. यह दिमाग को व्यस्त और प्रवृत्त रखता है और मेमोरी रिकॉर्ड करता है. आइए, स्वप्न की अवस्था से हमें स्वप्नविहीन निद्रा यानी सुषुप्तावस्था में प्रवेश करें. नींद के सभी स्थितियों में, बोधगम्य और अगोचर दोनों पूरी तरह से निष्क्रिय रहते हैं. तीसरी अवस्था में भी स्व आशंका के अधीन रहता है क्योंकि जागने के स्तर पर वापस आने के बाद भी यह गहरी नींद के आनंद को याद करता है. आधुनिक मन ने पहली अवस्था को स्व-चेतनावस्था के रूप में माना है; दूसरी स्थिति है स्व के अवचेतन स्तर के रूप में और तीसरा यानी सुसुप्तावस्था मन के अचेतन स्तर के रूप में.

इन अवस्थाओं में शरीर और मन की स्थिति में परिवर्तन होता है, लेकिन स्व में नहीं.

तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त एक और अवस्था है, जिसका आधुनिक मन की चर्चा नहीं करता उसे वेदांत तुरीयावस्था कहता है. इस अवस्था में, सभी बाहरी कार्यकलापों से मुक्त मन आत्मा की प्राप्ति में डूबा रहता है और स्व का आनंद लेता है, जो अंतिम और सर्वोच्च स्थिति है और मन की अलौकिक अवस्था है.

सुरेन्द्र लाल मेहता

(सुरेंद्रलाल जी. मेहता)
भारतीय विद्या भवन के अध्यक्ष

भवन्स नवनीत

समय... साहित्य... संस्कृति...

69 वर्षों की समृद्ध परम्परा की अगली कड़ी

वर्ष : 6 अंक : 2 ● अक्टूबर 2020

संस्थापक

कनैयालाल मुनशी ● श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक

विश्वनाथ सचदेव

सहायक सम्पादक

राधारमण त्रिपाठी

प्रसार - सहायक

आज़ाद आलम

सज्जा - **गौरी कानडे**

कार्यालय सहायक - **हंसमुख परमार**

सम्पादकीय कार्यालय

भारतीय विद्या भवन

क.मा. मुनशी मार्ग, चौपाटी, मुंबई 400007

फ़ोन : 022-23634462/ 1261/ 1554

फ़ैक्स : 022-23630058

प्रसार विभाग : 022-23514466/23530916

ई-मेल : navneet.hindi@gmail.com

bhavansnavneet@gmail.com

एक नज़र

कुलपति उवाच

03 हिंदी-हिंदुस्तानी
के.एम. मुनशी

अध्यक्षीय

04 सचेत मन और स्व
सुरेंद्रलाल जी. मेहता

पहली सीढ़ी

11 सवाल पूछते रहो
निदा फ़ाज़ली

धारावाहिक उपन्यास

74 योगी अरविंद (पंद्रहवीं किस्त)
राजेंद्र मोहन भटनागर

व्यंग्य

93 हा! हा! श्री दुर्दशा देखी न जाई
प्रेम जनमेजय

शब्द-सम्पदा

126 अजगर करे न चाकरी
अजित वडनेरकर

आलेख

54 काशी के गुरुकुल में चार दिन
बलराम

60 कैसा होता है हिन्दू?
धर्मपाल अकेला

आवरण-कथा

12 अनुचित से असहयोग
सम्पादकीय

14 असहयोग की नैतिकता और आज़ादी
प्रियदर्शन

19 असहयोग आंदोलन : आज़ादी का...
कनक तिवारी

24 गांधी का सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन दर्शन
आर. के. पालीवाल

34 'हिमालय जैसी भूल' के बहाने
भीखू पारेख

37 गांधीजी का सत्याग्रह
सिद्धेश्वर प्रसाद

---

61 भारतीय कौन
विद्यानिवास मिश्र

66 मेरे वे तीन गुरु
ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

107 साहित्य का सांस्कृतिक विवेक
सूर्यकांत नागर

116 लॉकडाउन में कुछ पन्ने ज़िंदगी के
अमृता सिन्हा

119 शक्ति के बिना शिव शव मात्र रह जाते हैं
डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव

129 आइए, सरदार पटेल को समझें

131 विभाजन : देश को बचाने का एकमात्र उपाय
डॉ. दिनकर जोशी

138 किताबें

कथा

43 विस्थापन
गंगाशरण सिंह

99 वह आया था
कुसुम अंसल

कविताएं

73 दो ग़ज़ल
सूर्यभानु गुप्त

115 और हम आगे निकल गये
अशोक अंजुम

124 सेवाग्राम : एक शाम
प्रफुल्ल शिलेदार

समाचार

140 भवन समाचार

144 संस्कृति समाचार

पाठकनामा

'नवनीत' से एक शिकायत है– लेख तो बहुत अच्छे होते हैं, पर कविता, कहानी के मामले में आप कंजूसी कर जाते हैं. इनकी संख्या बढ़ाइए. अगस्त के अंक में राजेंद्र श्रीवास्तव की कहानी बहुत अच्छी लगी. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और दीप्ति कुशवाहा की कविताएं भी पसंद आयीं. 'धरोहर' में हजारीप्रसाद जी द्विवेदी की रचना 'देवदारू' बहुत अच्छा चयन है.

● **कुसुम संघवी, जयपुर**

अगस्त के 'नवनीत' का आवरण पृष्ठ कुछ चौंकाने वाला था. इतने सारे ताले! पर जब आवरण-कथा के आलेखों को पढ़ा तो जैसे चाबी मिल गयी तालों की. सच, सम्पादकीय में आपने सही लिखा है कि आज़ाद देश के सामने पिछले सत्तर सालों में उठे सवाल ऐसे ताले हैं जो हमने खुद लगाये हैं– ये वे सवाल है जो हमसे जवाब मांग रहे हैं. ये अपने आप नहीं खुलेंगे, हमें खोलना होगा इन्हें. प्रियदर्शन का लेख भी बहुत कुछ कहने वाला है– जबतक हम आज़ादी को एक आदत नहीं बनाते, हम इसकी वास्तविक कद्र भी नहीं पहचानेंगे. शिवदयाल का लेख 'स्वतंत्र हुए, स्वाधीन होना है' अपने आप में एक चाबी है, जो हमारे कई ताले खोल देगी. बहुत अच्छे अंक के लिए बधाई.

● **जयकुमार, पटना**

अगस्त माह के 'नवनीत' में एक विचारोत्तेजक विषय को उठाया गया है. शिवदयाल, कुमार पार्थसारथी और गणेश देवी के लेख झकझोर देने वाले हैं. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता भी हमारे गज़ब के देश की हकीकत बयां करने वाली है.

● **गीतम पाण्डेय, दिल्ली**

नवनीत का अगस्त अंक मिला. पढ़कर सुखद अनुभूति हुई. आर.के. नारायण की पुस्तक के अंश में भारती और श्रीराम की कथा हमें उस दौर में ले गयी जब गांधीजी का आशीर्वाद ईश्वर के आशीर्वाद समान ही था. लोग अपने दांपत्य जीवन के आरंभ के लिए कितनी लंबी प्रतीक्षा किया करते थे. एक आज का समय है और एक तब का समय था. कितना पावित्र्य था संबंधों में. संबंधों की वह शुचिता शायद अब लौटकर कभी न आयेगी. रचना प्रकाशित करने हेतु आभार.

● **विनोद रस्तोगी, भोपाल**

आदरणीय सर नमस्कार. अभी-अभी नवनीत का पीडीएफ मिला जिसमें मेरी भी एक रचना छपी है किंतु मेरा नाम अमृता सिन्हा की बजाय अमृता सिंह छपा है. आपसे निवेदन है कि कृपया मेरा नाम सुधार कर अमृता सिन्हा कर दे. धन्यवाद.

● **अमृता सिन्हा**

अगस्त अंक में प्रकाशित रघुनाथ शरण का लेख वाकई आंखें खोल देने वाला है. लेखक ने ऐसे मुद्दे को उठाया है जिसे प्राय: मीडिया और बहुतायत सूचना माध्यमों में या तो अनदेखा कर दिया जाता है या फिर कहीं छोटी-सी खबर के रूप में प्रकाशित किया जाता है. लेखक ने जिस तथ्यात्मक रूप से पूरे कांड को सामने रखा वह काबिले तारीफ है. पता नहीं एक अदद जानवर को न्याय दिलाने के लिए सरकार कितनी गंभीर होगी तथा न्यायपालिका क्या आदेश देगी. फिलहाल नवनीत के माध्यम से ऐसी महत्वपूर्ण घटना को प्रकाशित करना सुखद और उम्मीद को जिंदा रखने वाला है. नवनीत विभाग को धन्यवाद.

● **अंतरा दुबे, बस्तर**

वर्षों बाद नवनीत के माध्यम से आचार्य श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का ललित निबंध देवदारु पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. पढ़कर लगा कि ऐसे लेख मनीषी विद्वान और द्विवेदी जी जैसे लेखक ही लिख सकते हैं. वर्तमान में ऐसा लालित्य और ज्ञानपूर्ण लेख लिखा जाना लगभग असंभव ही है. लेखक तो कई हैं परंतु जिस लालित्यपूर्ण ढंग से द्विवेदी जी ज्ञान को परोस देते थे वैसा फिर आज तो दुर्लभ ही है. साधुवाद.

● **हरिशरण वाजपेयी, कानपुर**

नवनीत के ग्राहक बनिए

प्रति अंक	- 30 रुपये	विशेष अंक (वार्षिक)	- 40 रुपये
एक वर्ष का शुल्क	- 300 रुपये	दो वर्ष का शुल्क	- 580 रुपये
तीन वर्ष का शुल्क	- 850 रुपये	पांच वर्ष का शुल्क	- 1400 रुपये
दस वर्ष का शुल्क	- 2800 रुपये	विदेशों में एक वर्ष के लिए	- 1500 रुपये (समुद्र मार्ग)
		विदेशों में एक वर्ष के लिए	- 2600 रुपये (हवाई मार्ग)

(कृपया चेक / डीडी **'भारतीय विद्या भवन'** के नाम से बनायें.)

इंटरनेट से नवनीत का चंदा भरने के लिए लॉग ऑन करें

http://www.bhavans.info/bookstore/navneet-hindi.php

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। वेदो नित्यमधीयताम्।
वेदाः वयं वः शरणं प्रपन्नाः। वेदा ये नः परं धनम्।।

अद्वैत विद्याचार्य महाराजा साहेब

श्री गोविन्द दीक्षितर पुण्य स्मरण समिति (पंजीकृत)

'श्री गोविंद दीक्षिता घटिका स्थानम' 29-30, ईस्ट अयन स्ट्रीट, (प्रवेश योगासलाई मार्ग से) कुम्बकोणम्, तमिलनाडु-612001 भारत. टेली नं. (कार्यालय) (0435) 2425948, 2401789, पाठशाला: 2422866, 2401788, Email: rajavedapatasala@gmail.com
Website: www.rajavedapatasala.org

वेद और शास्त्र निहित धरोहर को प्राचीन पारम्परिक गुरुकुल प्रणाली द्वारा सुरक्षित रखने के लिये निवेदन

राज वेद काव्य पाठशाला, कुम्बकोणम् की स्थापना ई.स. 1542 में तीन नायक राजाओं के प्रधानमंत्री **संत अद्वैत विद्याचार्य महाराजा साहेब भगवान श्री गोविन्द दीक्षितर** ने की. यह तांजोर स्थित पवित्र कावेरी नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है. जिसका उद्देश्य है वेदों और शास्त्रों का प्रचार-प्रसार. यह तमिलनाडु स्थित पूरे भारत वर्ष में एकमात्र पाठशाला है, जो बिना किसी रुकावट 471 वर्षों से कार्यरत है. यहां निर्धारित पाठ्यक्रम के तहत तीनों वेद-ऋग्, यजु (शुक्ल और कृष्ण) तथा सामवेद की शिक्षा एक ही संकुत के नीचे 8-12 वर्ष के बाल-विद्यार्थियों को दी जाती है. यहां 155 विद्यार्थियों को छह से दस वर्ष तक प्रशिक्षण दिया जाता है. आवास-निवास, खान-पान, यात्रा व शिक्षा की सुविधा आदि समिति अपनी ओर से मुफ्त में करती है. इन विद्यार्थिओं को पाठशाला के 14 वरिष्ठ अध्यापकों के सान्निध्य में वेद-शास्त्रों की शिक्षा दी जाती है. वैदिक शिक्षा की सफल समाप्ति पर उन्हें वेद व शास्त्रों की उच्चतर शिक्षा के लिए पाठशाला के विद्वान अध्यापकों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है.

पाठशाला की इन सब गतिविधियों पर होने वाले बढ़ते व्यय के निरूपण हेतु कांची के कामकोटि मठ के श्री जयेंद्र सरस्वती स्वामिगल द्वारा दि. 21-6-2004 को नवनिर्मित पाठशाला भवन **श्री गोविंद दीक्षितर घटिका स्थानम्** (13,500 वर्ग फीट) को वैदिक विद्यार्थियों हेतु समर्पित किया गया.

पाठशाला के बढ़ते हुए खर्च की समस्या कम करने हेतु निम्नलिखित योजनाओं के अंतर्गत अनुदान का स्वागत है, कृपया अपना फोन नं: (STD कोड के साथ) मोबाइल नम्बर/इ-मेल पूरा पत्ता व पिन कोड अवश्य लिखें.

योजना का नाम	अनुदान (आंशिक व्यय)	स्थाई अनुदान
वैदिक विद्यार्थी भोज (समाराधना)		
घरेलू भोजन	रु. 700/-	रु. 9000/-
विशेष समाराधना	रु. 2500/-	रु. 30,000/-
चावल और दाल हेतु - (75 किलोग्राम)	रु. 1600/-	रु. 20,000/-
वेद (शिक्षा एवं संक्षण हेतु) प्रति विद्यार्थी	रु. 12,000/- प्रतिवर्ष	रु. 1,50,000/-

अनुदान क्रास चेक, डी.डी. **'ए.वी.एम.एस.जी.डी.पी.एस. समिति'** के पक्ष में 'कुम्बकोणम्' पर देय होना चाहिए. पत्राचार हेतु उपरोक्त पते पर अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष से सम्पर्क करें.

पहली सीढ़ी

।।आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।।

सवाल पूछते रहो

सवाल पूछते रहो
सरों पे आस्मां था
कदम-कदम ज़मीन थी
धुआं-धुआं है आस्मां
ज़मीन खो गयी कहां?
बरस रही है तीरगी
न हाथ है न पांव है
न शहर है न गांव है
सदाएं ही सदाएं हैं
वतन, चराग, खून, डर

सवाल ही हयात है
सवाल कायनात है
सवाल ही जवाब है
सवाल इन्किलाब है

कोई जवाब दे न दे
सवाल पूछते रहो

– निदा फ़ाज़ली

सम्पादकीय

अनुचित से असहयोग

अंग्रेज़ों की उस अदालत में गांधी ने कहा था, 'हां, मैंने कानून तोड़ा है, पर चम्पारण छोड़कर जाने के आपके आदेश का पालन मैं नहीं करूंगा'. और अंतत: मजिस्ट्रेट को सज़ा निरस्त करनी पड़ी थी. यह गांधी के सत्याग्रह की ताकत का पहला अहसास था जो देश की आज़ादी की लड़ाई में देस की जनता और विदेशी हुक्मरान, दोनों ने अनुभव किया. इसके बाद जब 'न वकील, न दलील, न अपील' वाले रोलेक्ट एक्ट के खिलाफ़ गांधी ने देश को जगाया और जलियांवाला बाग की बर्बरता के खिलाफ़ सारा देश उठ खड़ा हुआ तो गांधी के असहयोग आंदोलन ने एक बार फिर दुनिया को नैतिकता की ताकत का अहसास कराया था. गांधी ने उस सरकार से असहयोग का मंत्र दिया जो इस देश की तो थी, पर देश के लिए नहीं थे. गांधी ने कहा हम इस विदेशी सरकार का कोई आदेश नहीं मानेंगे, किसी कानून का पालन नहीं करेंगे.

पांच सितम्बर १९२० को यह असहयोग आंदोलन प्रारम्भ हुआ था. उद्देश्य था विदेशी शासन की समाप्ति. गांधी के नेतृत्व में यह पहला जन-आंदोलन था, जिसमें जनता के हर वर्ग ने आगे बढ़कर हिस्सा लिया. गांधी ने देश की जनता का आह्वान किया कि वे सरकारी स्कूलों का बहिष्कार करें, अदालतों की सीढ़ियां न चढ़ें, सरकारी कानूनों के पालन न करने की शपथ लें. यह पूरी आज़ादी की पहली शपथ थी.

आंदोलन रंग लाने लगा था. देश, आज़ादी के एक नये अहसास को जी रहा था. ब्रिटिश हुकूमत को समझ नहीं आ रहा था कि इस जन-आंदोलन का मुकाबला कैसे करे. तभी चौरा-चौरी की हिंसक घटना हुई जिसमें क्रुद्ध आंदोलनकारियों ने एक पुलिस-चौकी को आग लगा दी. गांधी को लगा अभी देश की जनता इस अहिंसक आंदोलन के लिए तैयार नहीं है, और उन्होंने चरम पर पहुंच रहे आंदोलन के स्थगन की घोषणा कर दी! जनता हतप्रभ थी.

नेता चकित! पर गांधी स्थगन के अपने निर्णय पर अडिग थे.

यह सही है कि आंदोलन अपनी चरम परिणति तक नहीं पहुंच पाया. इसके कारणों-परिणामों को लेकर बहुत बहस हुई है, आगे भी होती रहेगी.

पर एक बात जो इस असहयोग आंदोलन ने दुनिया को सिखायी, वह यह है कि नैतिक ताकत किसी भी अन्य ताकत से अधिक बलशाली होती है, लेकिन नैतिकता का तकाज़ा यह भी है कि संघर्ष किसी भी दृष्टि से अनुचित के पक्ष में नहीं होना चाहिए. तभी गांधी ने यह भी अहसास कराने की कोशिश की थी कि पीड़ित भी कहीं न कहीं अपनी दशा के लिए दोषी हो सकते हैं. अंग्रेज़ों ने इस देश की जनता के सहयोग से ही देश की जनता का दमन किया, इसलिए, दमन का प्रतिकार करने की ज़िम्मेदारी भी देश की जनता की ही है. लड़ाई उचित के पक्ष में और अनुचित के खिलाफ़ होनी चाहिए, तभी उसके पीछे नैतिक ताकत होती है और तभी ताकत का असर भी होता है.

सौ साल पहले चलाये गये गांधी के असहयोग आंदोलन को न तो सिर्फ दमन के विरोध के संदर्भ में समझा जा सकता है और न ही केवल उसे वापस लिये जाने के निर्णय के औचित्य-अनौचित्य में इसे उलझाना सही होगा. उस आंदोलन का कोई संदेश यदि आज हमारे लिए है तो वह यही है कि अनुचित के खिलाफ़ खड़ा होना स्वतंत्र देश के हर नागरिक का कर्तव्य है. और इसके लिए पहली ज़रूरत यह है कि हम उचित-अनुचित के प्रति जागरूक रहें. तार्किकता, विवेक और नैतिकता की दृष्टि से यदि कुछ अनुचित लगता है तो उसका विरोध करना व्यक्ति का कर्त्तव्य है. गांधी का सत्याग्रह इसी कर्त्तव्य की पूर्ति का एक कारगर माध्यम है. गांधी ने अपने सोच और काम से इसकी सार्थकता सिद्ध की थी. जहां उन्हें लगा कि उनका निर्णय कुछ गलत हो गया है तो पूरी ईमानदारी से उन्होंने इसे स्वीकार भी किया. सोच की यह ईमानदारी किसी भी विवेकशील व्यक्ति और समाज की पहली पहचान है. ये सारी बातें 1920 के उस असहयोग आंदोलन की शताब्दी के संदर्भ में याद आनी चाहिए.

सच पूछा जाये तो ऐसे अवसर यह याद करने का मौका भी होते हैं कि जो मोड़ हम पीछे छोड़ आये हैं, उनके औचित्य और सार्थकता के बारे में हम आज के संदर्भों में विचार करें. उनसे कुछ सीखने का यही अर्थ होता है. गांधी का असहयोग आंदोलन एक विदेशी ताकत से मुक्ति पाने के लिए ही नहीं था, उसका महत्व इस बात में है कि उसने हमें अनुचित के खिलाफ़ खड़े होने का दर्शन दिया. यह दर्शन हमारे आज की भी ज़रूरत है और हमारे आने वाले कल की भी.

असहयोग की नैतिकता और आज़ादी

● प्रियदर्शन

ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन का आह्वान करते हुए गांधी जिस शब्दावली का इस्तेमाल करते हैं, वह जितनी राजनैतिक है, उससे कहीं ज़्यादा धार्मिक और नैतिक दिखाई पड़ती है. उन्होंने कहा कि इस 'शैतानी' सरकार के साथ सहयोग करना 'पाप' है.

गांधी अपने शब्दों का चुनाव बहुत सावधानी से करते थे. ब्रिटिश राज के अन्यायों से वे पहले भी परिचित थे लेकिन ब्रिटिश सभ्यता के मूल्यों पर उनका भरोसा कायम था. चम्पारण में सत्याग्रह का जो प्रयोग उन्होंने किया था, वह ब्रिटिश संविधान के दायरे में रहते हुए किया था. तब भी निलहा अंग्रेज़ों के अत्याचार अपने चरम पर थे, लेकिन चम्पारण तक गांधी बिल्कुल गुलामों की तरह जीने को मजबूर किये गये ग्रामीणों को उनकी नागरिकता लौटा रहे थे– बता रहे थे कि उनके अधिकार हैं और उन्हें संवैधानिक ढंग से हासिल किया जा सकता है. इस नागरिकता का दूसरा पहलू साफ़-सफ़ाई और पढ़ाई-लिखाई को बढ़ावा देने वाले उनके कार्यक्रमों से जुड़ता था जिसके तहत जैसे वे एक नागरिक समाज का निर्माण कर रहे थे.

लेकिन तब तक शायद उन्हें एहसास नहीं था कि ब्रिटिश साम्राज्य को ऐसा नागरिक समाज नहीं चाहिए– उन्हें अपने उपनिवेश के भीतर दासत्व की हैसियत वाली प्रजा चाहिए– जो उसके अन्याय झेलती रहे, उसकी खुशहाली का सामान जुटाती रहे.

लेकिन असहयोग आंदोलन तक आते-आते हालात अलग हो चुके थे. रॉलैट ऐक्ट और जलियांवाला बाग ने बताया कि अंग्रेज़ों के मंसूबे क्या हैं और इन्हें पूरा करने के लिए वे किस हद तक की क्रूरता पर जा सकते हैं. खास कर जलियांवाला बाग की हिंसा और इस दौर में पूरे देश में चले दमन चक्र ने उन्हें हिला दिया. शुरू में उन्हें सम्भवत: इसका ठीक-ठीक अंदाज़ा नहीं था कि जलियांवाला बाग हत्याकांड में कितने लोग मारे गये, लेकिन आने वाले दिनों में यह भीषण त्रासदी उनकी चेतना पर बार-बार दस्तक देती रही, वे अलग-अलग अवसरों पर याद करते रहे कि किस तरह अंग्रेज़ों के इस उत्पीड़न ने भारत की एक अलग-सी राष्ट्रीयता का निर्माण किया है. अमृतसर से शुरू हुई हिंदू-मुस्लिम एकता की ईंट पर विकसित हो रही इस नयी राष्ट्रीयता ने आज़ादी की लड़ाई का मूल मंत्र बनाया और पूरे भारत को जोड़ा. आने वाले दौर में इस राष्ट्रीयता में जो दरार पड़ी और जिसकी वजह से पाकिस्तान का निर्माण हो पाया, वह एक दुखद और अलग कहानी है.

लेकिन गांधी उसी समय भली-भांति यह देख पा रहे थे कि राज किस हद तक अमानवीय होता जा रहा है. अमृतसर की एक गली में, जहां एक अंग्रेज़ महिला डॉक्टर शेरवुड के साथ भारतीयों की भीड़ ने बदसलूकी की थी, रेंग कर जाने का अंग्रेज़ी फरमान गांधीजी के लिए जलियांवाला बाग से भी ज़्यादा अन्यायी और अमानवीय था.

दरअसल इसी के बाद जो गांधी पहले विश्वयुद्ध तक अंग्रेज़ी सेना में भारतीय युवकों के भर्ती होने का आह्वान कर रहे थे और मान रहे थे कि प्रजा राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करेगी तब राज्य प्रजा के प्रति ज़्यादा उत्तरदायी होगा, वे अचानक उसके खिलाफ़ खड़े हो जाते हैं. वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के राक्षसी स्वरूप को पहचान पाते हैं और किसी भी तरह से उसकी मदद करना अधार्मिक मानते हैं.

दरअसल यहां गांधी भी बदल रहे हैं– अहिंसा, सत्याग्रह और साम्राज्य को लेकर उनकी राय बदल रही है. 1909 में उन्होंने जिस 'हिंद स्वराज' की रचना की थी, उसके पहले प्रयोग की चुनौती उनके सामने आ खड़ी हुई है.

एक निजी प्रसंग भी इसी दौरान गांधी के सामने आ खड़ा होता है. इत्तिफ़ाक से यही वह दौर है जब लाहौर में सरला देवी से वे मिलते हैं और उनका व्यक्तित्व

किसी चुंबक की तरह गांधी को अपनी ओर खींच लेता है– इस हद तक कि गांधी उनके साथ अपने 'आध्यात्मिक विवाह' की बात भी सोच और कह लेते हैं. लेकिन गांधी के अनन्य सहयोगी उनके इस अबूझ-नये सम्बंध से परेशान हैं. महादेव देसाई, सी. राजागोपालचारी और गांधीजी के बेटे देवदास तक अपनी आपत्ति दर्ज कराते हैं और कस्तूरबा के बारे में सोचने को कहते हैं.

अंतत: गांधी इससे भी बाहर आते हैं. जाहिर है, नैतिकता-अनैतिकता का द्वंद्व इस दौर में उनके भीतर सबसे गहरा रहा होगा. निजी रिश्तों से लेकर साम्राज्यवादी सम्बंधों तक को वे नये सिरे से देख-परख रहे हैं. लांछन भी झेल रहे हैं.

यहां से जैसे एक नया गांधी निकलता है– एक निहत्था गांधी– जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध छेड़ देता है. इस युद्ध में अपने मूल्यों पर अगाध विश्वास और अपने देशवासियों के उत्पीड़न से पैदा हुई धधकती पीड़ा उनके हथियार थे. 1920 में उन्होंने असहयोग आंदोलन शुरू किया. सितम्बर 1920 से शुरू हुए आंदोलन के तीन आयाम थे– पहला, उन तमाम वस्तुओं और सेवाओं का बहिष्कार, जिनसे अंग्रेज़ी राज, अंग्रेज़ी कारोबार और अंग्रेज़ी संस्थाओं को बने रहने में मदद मिलती है. दूसरा, स्वदेशी का इस्तेमाल– जिसके लिए गांधी ने खादी और चरखे को प्रतीक बनाया– कहा कि हमें आत्मनिर्भर होना होगा. तीसरा– कुछ दिलचस्प ढंग से गांधी जी ने इसमें खिलाफ़त का समर्थन भी जोड़ दिया. इसके साथ अस्पृश्यता निवारण का

भी मुद्दा जुड़ा हुआ था.

इसमें संदेह नहीं कि अगले दो साल तक गांधी की अपील पर देश ने अंग्रेज़ों के साथ लगभग असहयोग किया. तमाम छोटे-बड़े शहरों में विदेशी कपड़ों की होली जली, हड़ताल चली, दुकानों के आगे धरने दिये गये, अंग्रेज़ों के दमन के बीच जगह-जगह प्रदर्शन होते रहे. पहली बार पूर्ण स्वराज्य का तब तक अघोषित लक्ष्य जैसे बहुत क़रीब आ चुका था और भारत की जनता जैसे गांधी के इशारे पर अपनी नियति अपने दम पर लिखने का मन बना चुकी थी. लेकिन इसी मोड़ पर 1922 में चौरी-चौरा कांड घटित होता है– एक पुलिस थाने के भीतर जला कर 22 पुलिसकर्मी मार दिये जाते हैं और स्तब्ध गांधी अपना आंदोलन वापस ले लेने का एलान करते हैं. अब यह इतिहास की बहुत आम जानकारी है कि गांधी के इस एलान ने तब के कई बड़े राष्ट्रीय नेताओं को हतप्रभ और हैरान छोड़ दिया- उन्हें लगा कि गांधी भावुकता में यह फ़ैसला कर रहे हैं. असहयोग आंदोलन के दौरान अपने बेटे जवाहरलाल नेहरू के साथ सबसे पहले जेल जाने वाले मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास जैसे नेताओं ने इसके बाद कांग्रेस छोड़ी और स्वराज्य पार्टी बना ली.

लेकिन क्या गांधी ने यह फ़ैसला सिर्फ़ भावुकता में, अपनी जज़्बाती ज़िद में किया था? क्या इस ज़िद ने भारत की राजनीतिक आज़ादी की घड़ी कुछ टाल दी? इस प्रश्न का तो नहीं, लेकिन इस तक पहुंचने वाले कई प्रश्नों का गांधी पहले और बाद में भी और लगातार उत्तर देते रहे. आंदोलन से पहले भी अपना यह दृढ़ मत वे बार-बार दुहराते रहे कि सत्य और अहिंसा के बिना किसी राजनीतिक आज़ादी का उनके लिए कोई मतलब नहीं है– हिंसा के स्पर्श मात्र से हासिल स्वराज अंततः लक्ष्यभ्रष्ट हो जायेगा. यही नहीं, असहयोग आंदोलन शुरू करने पर भी उनके सबसे आत्मीय जनों ने सवाल खड़े किये. रवींद्रनाथ टैगोर के उपन्यास 'घरे बाइरे' में असहयोग और स्वदेशी की बहस बहुत प्रखरता से उभरती है. बल्कि टैगोर सीधे लिखकर गांधी के असहयोग आंदोलन और स्वराज की आलोचना करते हैं. वे लिखते हैं, 'हम पश्चिम से सीखे एक मुहावरे से अपने-आप को चाहे जितना भ्रमित कर लें, स्वराज हमारा लक्ष्य नहीं है. हमारी लड़ाई आध्यात्मिक लड़ाई है. यह मनुष्य के लिए है. हमें मनुष्य

यह दृढ़ मत वे बार-बार दुहराते रहे कि सत्य और अहिंसा के बिना किसी राजनीतिक आज़ादी का उनके लिए कोई मतलब नहीं है– हिंसा के स्पर्श मात्र से हासिल स्वराज अंततः लक्ष्यभ्रष्ट हो जायेगा.

को उस जाल से मुक्ति दिलानी है जिसे उसने अपने चारों ओर लपेट लिया है– राष्ट्रीय अहमन्यता के ये संगठन.'

गांधी अपने विनोदी अंदाज़ में इसका जवाब देते हैं. वे लिखते हैं, 'इसलिए मुझे लगता है, असहयोग आंदोलन के नकारात्मक पक्षों को लेकर कवि अनावश्यक तौर पर भयभीत हैं. हम 'नहीं' कहने की ताकत खो चुके थे. सरकार को 'नहीं' कहना गद्दार, लगभग, काफ़िर, जैसा हो चुका था. सहयोग करने से यह सुविचारित इनकार उस निराई की प्रक्रिया की तरह है जिसे बुवाई से पहले फ़सल उपजाने वाला पूरा करता है. खेती के लिए बुवाई जितनी ज़रूरी है उतनी ही निराई भी.'

वैसे टैगोर ही नहीं, जिन्ना भी असहयोग में खिलाफ़त को शामिल करने के खिलाफ़ थे. तब तक वे धार्मिक कट्टरता की राजनीति से सबको सावधान करने वाले नेता हैं जिनको सरोजिनी नायडू हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतिनिधि बताती हैं. लेकिन कहते हैं कि कांग्रेस अधिवेशन में इस मुद्दे पर अली भाइयों ने उनसे जो बदतमीज़ी की, उससे खिन्न जिन्ना अगले कुछ साल तक कांग्रेस से ही नहीं, भारतीय राजनीति से भी दूर हो गये. वे जब लौटे तो कुछ और होकर लौटे. दिलचस्प यह है कि असहयोग आंदोलन वापस लेने के बाद अली भाई भी गांधी से नाराज़ हो गये.

लेकिन टैगोर जिस बात को कुछ दूसरे संदर्भ में रख रहे थे, उसे गांधी बिल्कुल भारतीयता के संदर्भ में देख रहे थे. राष्ट्रवादी उन्माद की सीमाओं को वे भी पहचानते थे और इसका उल्लेख वे हिंद स्वराज में भी कर चुके थे. उनके लिए यह बार-बार दुहराई जाने वाली बात थी कि अंतत: स्वराज की लड़ाई नैतिक हथियारों से ही लड़ी जाएगी– राजनैतिक औज़ारों से नहीं. असहयोग आंदोलन की समाप्ति के 25 साल बाद जो राजनीतिक आज़ादी मिली, जो स्वराज मिला– दुर्भाग्य से उसमें कई और राजनीतिक दुरभिसंधियां शामिल हो गयीं और इतिहास के भयावहतम खून-खराबे के बीच चलती हुई आज़ादी दिल्ली तक आयी. गांधी जैसे इस रक्ताक्त आज़ादी से भी असहयोग कर रहे थे. पंद्रह अगस्त को वे दिल्ली से दूर नोआखाली में दंगे रोकने में लगे हुए थे.

बहरहाल, इस खून-खराबे के बाद भी भारत बचा रहा, तो इसका श्रेय असहयोग आंदोलन, नमक आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे विराट कार्यक्रम से पैदा ऊर्जा और इन सबके ऊपर छाये गांधी के उस नैतिक आलोक को जाता है जो आज भी हमारा पथ-प्रदर्शक है. गांधी की नैतिक आभा ही दरअसल उनकी राजनैतिक आभा थी जो उन्हें मनुष्य नहीं, देवता बनाती थी और फिर देवता जैसा मनुष्य बना डालती थी. ❑

असहयोग आंदोलन : आज़ादी का बीजाणु

● कनक तिवारी

गांधी एक व्यक्ति या वैचारिक संस्था होने के साथ-साथ एक पहेली या मनुष्य मन की बीजगणित के असाधारण साध्य भी हैं. उनका सतही मूल्यांकन भी बहुत हुआ है. गांधी के जेहन की जांच करते अन्वेषक को बिजली का करेंट जैसा लगने का अहसास भी होता है. 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटे गांधी भारत के समानार्थी बने रहे. शुरूआती वर्ष असमंजस, अजनबीपन और अव्यक्तता में दिखते गांधी विकास के संघर्षधर्मी तेवर के प्रयोगशील योद्धा की तरह इतिहास में दर्ज हैं. दक्षिण अफ्रीका में मूल निवासियों और भारतीय रहवासियों के हक में गांधी के चलाये आंदोलन पहली बार बूझे गये कि राजनेता को धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, समाजविज्ञान, आर्थिक तंत्र, सैद्धांतिक राजनीति और उसका व्यवहार सब कुछ जानना चाहिए. फिर समझे कि जीवन का मर्म सत्य ही है और विश्व नागरिकता का व्यापारिक जुड़ाव केवल अहिंसा के ज़रिये हो सकता है.

यह वैज्ञानिक सच है कि किसी वृक्ष, विचार, आंदोलन और मनुष्य का विकास यक ब यक नहीं, क्रमिक होता है. गांधीजी द्वारा आविष्कृत असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि जानना दिलचस्प है. जलियांवाला बाग की भयानक त्रासदी के पहले और समानांतर अंग्रेज़ी हुकूमत रौलेट एक्ट का

विधायन करने पर जिद और साजिश की मानसिकता में थी. देश में उसका छिटपुट विरोध शुरू हो चुका था. गांधीजी उस सामाजिक असंतोष से निरपेक्ष नहीं रहे. खराब स्वास्थ्य के बावजूद निकटतम सहयोगियों को बुलाकर आश्रम में विचार विमर्श किया और सत्याग्रह शुरू करने एक 'सत्याग्रह सभा' गठित करने का विचार मूर्त हो गया. इसी दरमियान गांधीजी को अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ़ सुविचारित रणनीति बनाने के मकसद की तजवीज करने मद्रास आमंत्रित किया गया. खराब स्वास्थ्य रहते भी गांधीजी गये. वे भारी ऊहापोह में थे कि बर्तानवी हुकूमत की चट्टानी लगती ताकत के मुकाबले हिंदुस्तानी जद्दोजहद की रणनीतिक शैली क्या हो सकती है.

बाद में बापू ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा कि इसी उधेड़बुन में सोचते विचारते मैं सो गया. दूसरे दिन सुबह नींद कुछ जल्दी खुल गयी. मेरा मस्तिष्क तंद्रा की हालत में था. जैसे सुबह की रोशनी की पौ फटने के पहले अंधेरा जाते जाते एक तरह का धुंधलका आसमान में बिखेर देता है. वैसी मानसिक हालत में अचानक एक प्रयोग की कौंध उपजी. गांधीजी ने सोचा यही संदेश दूंगा कि सब लोग ब्रिटिश हुकूमत से पूरी तौर पर असहयोग करते हुए अपना कामकाज एक दिन के लिए बंद रखें. उपवास करें और साथ-साथ संघर्ष करने के लिए मानसिक रूप से तैयार होते अपनी आत्मिक शुद्धि का अभियान हाथ लें. तय हुआ 30 मार्च 1919 को प्रतीकात्मक तौर पर पूरे देश में अभियान शुरू होगा. उसे बाद में 6 अप्रैल के लिए तय किया गया.

अंग्रेज़ी अकड़, अत्याचार, कानूनों से छेड़छाड़ तथा साम्राज्यवादी अहंकार के चलते गांधी ने 28 जुलाई, 1920 को घोषणा की कि 1 अगस्त 1920 से असहयोग आंदोलन शुरू होगा. पृथक वैचारिक ध्रुवों पर होने के बावजूद लोकमान्य तिलक ने इसकी सराहना की. दुर्भाग्यवश उनकी उपस्थिति से आंदोलन वंचित हो गया क्योंकि 31 जुलाई, 1920 की मध्यरात्रि तिलक का निधन हो गया. गांधीजी अली बंधुओं के साथ पूरे देश का तूफानी दौरा करने निकल गये. 4 सितम्बर, 1920 को कलकत्ता कांग्रेस सम्मेलन में असहयोग आंदोलन के विवरण और रूपरेखा को समर्थन देते 7 सूत्रीय कार्यक्रम का ऐलान हुआ. गांधी ने दो टूक कहा यदि कांग्रेस देश पर हो रहे अन्याय का सार्थक प्रतिकार नहीं कर सकती तो फिर उसके होने न होने का ही क्या अर्थ है. उन्होंने आश्वासन भी दिया कि यदि उनके बताये अहिंसक रास्ते पर देश चले तो एक साल में ही आज़ादी मिलना तय है. 9 सितम्बर, 1920 को नागपुर कांग्रेस सम्मेलन के वक्त जमायतुल-उलेमा-ए हिंद ने

मुसलमानों की ओर से साथ देने का फतवा जारी किया. हिंदू मुस्लिम एकता का यह चार्टर इतिहास में अपना सेक्युलर अस्तित्व रेखांकित करता है. नागपुर में ही गांधी के आग्रह पर कांग्रेस का नया संविधान मंजूर किया गया. वर्षों बाद गांधी ने टिप्पणी की थी कि भारत को आजादी मिल जाने पर राजकाज चलाने के लिए कांग्रेस संविधान का प्रारूप तत्काल उपलब्ध है.

युद्ध के लाक्षणिक अवयवों के ठीक उलट गांधी ने अनुशासन में रहने की लचीली परिधि, कुर्बानी, धीरज और सात्विक ज़िद को संघर्षरत भारतीय मनुष्य होने का हथियार बनाया.

असहयोग आंदोलन एक अजीबोगरीब मौलिक सियासत धर्म का इंसानी प्रयोग था. वह युद्ध के खिलाफ़ अहिंसक सहनशीलता और उन्माद के खिलाफ़ सामूहिक अनुशासन का नैष्ठिक प्रदर्शन होने का सरंजाम था. युद्ध के लाक्षणिक अवयवों के ठीक उलट गांधी ने अनुशासन में रहने की लचीली परिधि, कुर्बानी, धीरज और सात्विक ज़िद को संघर्षरत भारतीय मनुष्य होने का हथियार बनाया. मन में विरोधी या शत्रु के लिए भी कुटिलता या प्रतिघात तक की हिंसा नहीं होनी चाहिए. यह मौलिक अनुसंधान मनुष्य स्वभाव के लिए असम्भव सम्भावना रही थी. उसे एक जिद्दी मसीहा मनुष्यों की बुनियादी आदत बनाकर आत्मा के सांचे में ढाल देने दक्षिण अफ्रीका के अपने निजी लेकिन सर्वज्ञात अनुभवों को भारत में पुनरावृत्त कर रहा था.

1 अगस्त 1920 से शुरू असहयोग आंदोलन औपचारिक तौर पर 6 फरवरी 1922 को गांधी ने स्थगित किया. उसके एक दिन पहले उत्तरप्रदेश के गोरखपुर के पास चौरीचौरा में हिंसक झड़पें होने से उद्वेलित भारतीयों ने कुछ ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या कर दी थी. यह गांधी को बेहद नागवार गुजरा. वे किसी भी परिस्थिति में हिंसा के आचरण को समर्थन जीवन भर नहीं दे पाये. उनके एकतरफा फैसले के कारण कांग्रेस में पहली बार गांधी विरोध, विरोधाभास, विवाद और विषम आक्रमणों के शिकार बने. वह 'फेनोमिना' पूरे जीवन उनके यश से द्वंद्व में रहा. भौतिक वस्तुओं और व्यक्तियों को जो लोग आंदोलन, क्रांति या राजनीतिक घटनाक्रम का साधन समझते हैं, वे नहीं समझ पाते कि मोहनदास करमचंद गांधी ने हर मनुष्य के अंतर में एक विशाल संसार रच देने का उद्दाम उद्भासित कर दिया था. अपनी नज़र में परीक्षित होने के बाद आत्मविश्वास एक मनुष्य-प्रतीक बनकर सभी बंधुओं और सहयोगियों को उसी तरह उद्भासित करता था, जैसे जलने

पर दीपक एक दूसरे को. नैतिक मनुष्यों का जमावड़ा भी झुंड नहीं कहलाता. समूह या शृंखला में रहते वे मानवी इंसानियत का फलसफा हो जाते हैं. गांधी का यह चमत्कार भारत में आंशिक सफल ही हो पाया. यह इतिहास का तथ्य है कि कांग्रेस पार्टी सहित समकालीन भारतीय पूरी तौर पर अपने निजी और राजनीतिक जीवन में गांधी प्रणीत अहिंसा को जस का तस अपनाने में असहमत, अयोग्य और आशंकित भी थे.

गांधी द्वारा बारडोली सहित देश के अन्य इलाकों में चल रहे असहयोग आंदोलन को चौरीचौरा की घटना के कारण स्थगित कर देने से कांग्रेस के नेताओं की एकता में फूट पड़ी. 12 फरवरी, 1922 को हुए सम्मेलन में मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास जैसे नेता गांधी के खिलाफ़ हुए. जवाहरलाल नेहरू भी दुविधा में थे. ये नेता पूरी तौर पर असहयोग आंदोलन को रोके जाने के पक्ष में नहीं थे. इससे कांग्रेस आंदोलन को धक्का भी लगा. कुछ नेता आंदोलन चलाते रहते बहिष्कार के पक्ष में थे और कुछ स्वायत्त परिषदों में निर्वाचित होकर वहां वैधानिक संस्थागत विरोध करना चाहते थे. खिलाफती मुस्लिम भी बड़ी संख्या में गांधी और असहयोग आंदोलन से बिछुड़ते सरकार से, सार्थक संवाद करने की गुंजाइशें बनाने लगे. जो कार्यकर्ता गांधी के साथ थे, वे दृढ़ता से एकजुट रहे. गांधी की ऐसी दुविधाग्रस्त हालत देखकर कुटिल अंग्रेज़ हुकूमत ने उन्हें 10 मार्च, 1922 को गिरफ़्तार किया और छह वर्ष के लिए जेल की सज़ा देकर उन्हें पूना में यरवदा केंद्रीय जेल में पहुंचा दिया.

गांधी केवल नकारात्मक सोच के जननेता नहीं थे. वे जानते थे असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि में देश को सकारात्मक कार्यक्रम से लबरेज करना ज़्यादा आवश्यक है. इसलिए उन्होंने अपने केंद्रीय अभियान में असहयोग की भावना को पुख्ता करने, उसके साथ साम्प्रदायिक सद्भाव, अस्पृश्यता उन्मूलन, खादी और हथकरघा, स्वदेशी ग्रामोद्योग, ग्राम विकास, राष्ट्रीय शिक्षा, मद्यनिषेध और पंचायतों का गठन जैसे मुद्दे जोड़ रखे थे. गांधी की रणनीतिक कुशलता रही है कि चम्पारण और खेड़ा जैसे आंदोलनों में प्राण फूंकने के वक्त भी गांधी ने केवल उग्र आक्रामक और प्रतिशोधी हथियारों से लड़ना जनमानस को नहीं सिखाया. दुनिया के किसी भी जननेता से पहले उन्होंने हर मनुष्य को खुद अपने प्राकृतिक अवयवों में सुधरने का आह्वान किया. ताकि वह सामाजिक संघर्ष की इकाई के रूप में पहचान रखते हुए भी जनयुद्ध का प्रतीक समझा जाए.

असहयोग आंदोलन के कुछ असाधारण मनोवैज्ञानिक फलीभूत परिणामों को इतिहास

ने बाद में सिंहावलोकन में दर्ज किया. गांधी की रणनीति में वे सब मनोवैज्ञानिक मुद्दे पहले से शामिल थे जिनका अवलोकन और प्रस्फुटन भले बाद में लोगों ने समझा हो, लेकिन प्रत्यक्ष दीखते मुद्दों के अतिरिक्त उनमें अंतर्निहित भविष्यमूलकता को पकड़ पाना देश और अंग्रेज़ों दोनों के लिए तात्कालिक तौर पर सम्भव नहीं हो पाया था. गांधी ने पराजित लगते असंगठित करोड़ों नागरिकों में उत्साह, समर्पण और कुरबानी की भावना उनके चरित्र में आंज दी. वे आत्मानुशासन में रहते दुनिया की उस वक्त की सबसे ताकतवर लगती सेना, पुलिस, प्रशासनिक मशीनरी और संघर्षशक्ति के सामने बिल्कुल नहीं डिगे. शब्दकृपण लेकिन 'घाव करे गम्भीर' बीज वाक्य में गांधी ने कहा था असहयोग आंदोलन आत्मा और भौतिक ताकतों के बीच संघर्ष है. उन्होंने मनुष्य होने के अहसास को सत्ताभिमुखता पर वरीयता देते हुए आज़ादी की शुरूआत में ऐसा बीजारोपण किया जो बाद में पूरी दुनिया में एक सुवासित संदेश की तरह अब तक महसूस किया जा रहा है. गांधी की रणनीति का अंग्रेज़ हुक्काम पर दोतरफा असर पड़ा. एक तो उन्होंने सोच लिया कि भारतीय जाग गये हैं. उनके उठ खड़े होने से सत्ता में बहुत समय तक कायम रहना असम्भव होगा. दूसरी ओर उन्हें अपना आकलन करना पड़ा कि ब्रिटिश हुकूमत के क्रूर तेवरों को वे सत्ता की कायमी की लाक्षणिकता समझते रहे थे. वे तत्व गांधी के रणनीतिक कौशल के कारण काफूर हो रहे हैं. भारत में हुकूमूत कायम रखने के लिए हिंसक विचार पर पुनर्विचार करना होगा कि सरकार न्यायालय और कानून की बैसाखी के सहारे चलने का छद्म ढिंढोरा कब तक पीट पायेगी? ❑

मैं पूर्ण मनुष्य होता तो...

यदि मैं पूर्ण मनुष्य होता तो मुझे अपने पड़ोसियों के दुख देखकर वैसा महसूस न होता जैसा कि होता है. पूर्ण मनुष्य के रूप में मैं उनके दुखों को देखकर उन्हें दूर करने के उपाय बता देता और अपने भीतर के अजेय सत्य के बल पर उन्हें अपनाने के लिए लोगों को बाध्य कर देता. पर अभी तो मैं मानो एक धूमिल शीशे के ज़रिये ही देख पाता हूं और इसलिए धीरे-धीरे तथा कष्टकर प्रक्रिया द्वारा विश्वास जगा पाता हूं और तब भी सदा सफल नहीं होता.

– गांधीजी

गांधी का सत्याग्रह और असहयोग का दर्शन

● आर. के. पालीवाल

गांधी भले ही औपचारिक रूप से विज्ञान विषयों के विद्यार्थी नहीं थे लेकिन स्वभाव से वे प्रयोग वादी थे. उन्होंने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन को भी सत्य के प्रयोग शीर्षक से ही प्रस्तुत किया है. इस वर्ष हम उनके 1920 में शुरू किये असहयोग आंदोलन का शताब्दी वर्ष मना रहे हैं, जो भारत की आजादी के संघर्ष में उनका राष्ट्रीय फलक के पहले व्यापक सत्याग्रह आंदोलन के रूप में याद किया जाता है.

गांधी के नेतृत्व में चले असहयोग आंदोलन की गांधी की तैयारियों की खोजबीन करना बहुत रोचक अनुभव है. हम सब जानते हैं कि गांधी जब दक्षिण अफ्रीका गये थे तब उनके दिमाग में केवल और केवल अपने परिवार की रोज़ी-रोटी की चिंता थी, हालांकि नियति उन्हें कहीं और ले जाना चाहती थी, इसलिए एक के बाद एक ऐसे कारण बनते चले गये कि गांधी समाज और राजनीति से जुड़ते चले गये. पहले उन्होंने दक्षिण अफ्रीका प्रवास में भारतीयों के अधिकारों के लिए सत्याग्रह आंदोलन का नेतृत्व करना पड़ा और बाद में 1915 में भारत वापसी पर आज़ादी के संघर्ष में शामिल हो गये. इस दौरान अपने आश्रमवासी साथियों और देश-दुनिया में फैले सहयोगियों के माध्यम से वे अपने परिवार को निरंतर विस्तारित करते चले गये और 1920 आते-आते लगभग पूरा भारत ही उनका परिवार बन गया था.

गांधी ने यह खुद भी स्वीकार किया है कि सत्याग्रह का पहला पाठ उन्होंने अपनी सहधर्मिणी कस्तूरबा गांधी से सीखा था जो सत्य के प्रति बेहद आग्रही थी. धीरे-धीरे इसे गांधी ने सामाजिक राजनैतिक आंदोलन में एक धारदार अस्त्र की तरह सार्वजनिक रूप से जनहितार्थ इस्तेमाल करने की अनूठी कला विकसित की थी. इसका सबसे व्यापक प्रयोग राष्ट्रीय स्तर पर 1920 के असहयोग आंदोलन के रूप में हुआ था और उसके बाद 1930 के दांडी मार्च के नाम से मशहूर सविनय अवज्ञा आंदोलन और अंत में 1942 के ऐतिहासिक अंग्रेज़ों भारत छोड़ो आंदोलन में गांधी ने इसे पहले से बेहतर रूप में इस्तेमाल किया था.

राजनीतिक गुरु गोखले की सलाह पर एक साल लगभग पूरे देश में भ्रमण कर यहां की ज़मीनी हकीकत का गहन अध्ययन किया था जो उनके आगे के सत्याग्रह अभियानों में बहुत लाभप्रद रहा था. 1917 के चम्पारण सत्याग्रह में गांधी को बिहार के नील की खेती करने वाले गरीब किसानों की स्थानीय समस्या के समाधान के लिए भारत में सत्याग्रह के प्रयोग का पहला अवसर मिला था. इसके बाद उन्होंने अपने गृह राज्य गुजरात में पहले अहमदाबाद मिल मजदूर आंदोलन और फिर खेड़ा के किसान सत्याग्रह में अपने इस अहिंसक अस्त्र को अपनाया और इन दोनों में भी उन्हें अच्छे साथियों के कारण सफलता मिली. एक के बाद एक सफलता ने निश्चित रूप से गांधी के आत्मविश्वास को शिखर पर पहुंचा दिया था और उन्हें और व्यापक देशव्यापी सत्याग्रह शुरू करने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया था.

गांधी का यह स्वभाव था कि वे जल्दबाजी में कोई बड़ा कदम नहीं उठाते थे और बड़े आंदोलन शुरू करने के लिए काफी तैयारी और मंथन करते थे. दक्षिण अफ्रीका और फिर भारत में एक के बाद एक तीन स्थानीय सत्याग्रह सफल होने होने के बाद गांधी की भारत और विशेष रूप से कांग्रेस में भी लोकप्रियता बहुत तेज़ी से बढ़ी थी और वे इस स्थिति में आ गये थे जहां उनके युवा साथियों की एक ऊर्जावान टीम उनके कुशल नेतृत्व में किसी भी राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय रूप से सहभागिता करने के लिए उपलब्ध थी.

विनोबा भावे ने क्रांति के लिए दो ज़रूरी चीज़ों का एक साथ होना ज़रूरी माना है– एक संक्रमण का समय और दूसरे किसी महान विभूति की ऐसे समय में जनता के नेतृत्व के लिए उपस्थिति. भारत की लम्बी गुलामी से आज़ादी के लिए जनता काफी समय से कसमसा रही थी और गांधी ऐसे संक्रमण काल में उसे नेतृत्व प्रदान करने के लिए पूरी तरह सक्षम थे. इन्हीं परिस्थितियों में 1920 के

असहयोग आंदोलन में गांधी की क्रांतिकारी भूमिका तैयार हुई थी, हालांकि इसे चिंगारी देने के लिए रॉलेट एक्ट और उसके बाद हुआ जलियावाला कांड तात्कालिक प्रमुख कारण बने थे.

1920 के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में गांधी की लोकप्रियता के सामने मुहम्मद अली जिन्ना आदि उन नेताओं को जन समूह ने किनारे कर दिया था जो कांग्रेस की भूमिका को केवल संवैधानिक तरीके से ही प्रतिवेदन आदि देकर आगे बढ़ाने में विश्वास करते थे और असहयोग आंदोलन आदि के पक्ष में नहीं थे. इस अधिवेशन में ही पहली बार लगभग पूरी कांग्रेस की स्थाई कमान गांधी के हाथ में आ गयी थी जो आज़ादी के आंदोलन की समाप्ति तक कमोबेश गांधी के हाथ में ही रही थी.

गांधी के नेतृत्व में उपरोक्त सभी अनुकूल परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में ही भारत की आज़ादी के पहले सबसे बड़े राष्ट्रव्यापी असहयोग आंदोलन का आह्वान हुआ था.

गांधी के अनुसार ऐसा आंदोलन किसी व्यापक सामाजिक राजनैतिक भलाई के पवित्र उद्देश्य से किया जाता है जिसमें अपने विरोधी को अपनी बात शांतिपूर्ण और अहिंसक तरीके से बतायी जाती है और उनसे असहयोग कर उनकी गलत नीतियों का विरोध किया जाता है. इसका उद्देश्य अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन कर अपनी जायज मांग पूरी करना होता है और इसके लिए अपने मन में विरोधी के प्रति किसी तरह की दुर्भावना या नफरत की बजाय प्रेम की भावना होती है.

हालांकि दक्षिण अफ्रीका और बाद में भारत में चम्पारण, अहमदाबाद और खेड़ा में गांधी स्थानीय स्तर पर असहयोग और सत्याग्रह के सफल परीक्षण कर चुके थे लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर इसका परीक्षण इतने बड़े पैमाने पर 1920 में पहली बार हो रहा था इसलिए गांधी ने इसके लिए काफी तैयारी की थी और लोगों को विस्तार से समझाया था कि इसमें किसी के प्रति अपमान और दुर्भावना का नकारात्मक भाव नहीं रहता है. उनका यह भी कहना था कि गुलामी की पुरानी और मज़बूत ज़ंजीरों में डरी-सहमी जनता में निर्भयता का गुण और आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिए गलत को नहीं सहने की अच्छी प्रवृत्ति विकसित करना बहुत ज़रूरी है.

रोलेट एक्ट के खिलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए गांधी को देश भर में अपने जीवन के सबसे बड़े संघर्ष का मौका मिला था और गांधी ने इसे साकार करने की पूरी कोशिश भी की थी. दक्षिण अफ्रीका में इस तरह के दमनकारी कानूनों के विरोध के अनुभव से गांधी में गज़ब का आत्मविश्वास आ गया था और अब वे अपने देश में भी राष्ट्रीय स्तर पर छाने के लिए तैयार थे. गांधी ने रोलेट एक्ट के

विरोध में पंडित मदन मोहन मालवीय और श्रीनिवास शास्त्री से इंपीरियल कॉन्सिल से हटने की अपील की थी. उन्होंने अपने अहमदाबाद आश्रम में इस कानून के विरोध में रणनीति तैयार करने के लिए एक बैठक आहूत की थी जिसमें सरदार पटेल और सरोजिनी नायडू आदि जोशीले नेता उपस्थित थे. रोलेट एक्ट के विरोध में राष्ट्रव्यापी हस्ताक्षर अभियान चलाया गया था और इसका कड़ा विरोध करते हुए वायसराय चेम्सफोर्ड को पत्र लिखा था.

वायसराय से पत्र का जवाब नहीं मिलने पर गांधी ने दिल्ली में वायसराय से मुलाकात की थी लेकिन इस मुलाकात में भी कोई हल नहीं निकला था. दिल्ली से निराश गांधी अपने पुराने मित्रों से समर्थन जुटाने लखनऊ और इलाहाबाद आये थे जहां वे मोतीलाल नेहरू के घर रुके थे, जो उन्हें दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आंदोलन में मदद करते थे. मोतीलाल नेहरू का गांधी की योजना के प्रति ठंडा रुख था लेकिन उनके युवा पुत्र जवाहर लाल नेहरू ने प्रस्तावित आंदोलन के लिए काफी गर्म जोशी दिखाई थी. इसके बाद गांधी बम्बई आये थे. वहां भी इस अभियान के लिए सैकड़ों हस्ताक्षर जुटाये गये थे. मुहम्मद अली जिन्ना ने भी इम्पीरियल काउंसिल से त्यागपत्र देकर इस दमनकारी कानून का कड़ा विरोध जताया था.

राजाजी के अनुरोध पर गांधी मद्रास आये थे जहां उन्होंने दक्षिण भारत के कई शहरों में ज़ोर शोर से प्रचार किया था. तूतीकोरिन की सभा में देशव्यापी विरोध की सार्वजनिक घोषणा की गयी थी.

गांधी ने 6 अप्रैल को सुबह साढ़े छह बजे बम्बई की चौपाटी से देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया था. बम्बई, कराची, पटना, ढाका, कलकत्ता और मद्रास आदि सभी बड़े शहरों में इस आंदोलन को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी. इन प्रमुख व्यापार केंद्रों पर सभी प्रमुख बाज़ार बंद रहे थे. गांधी ने उस दिन उपवास भी रखा था.

गांधी के नेतृत्व में सम्पन्न इस पहले राष्ट्रीय आंदोलन में लोगों से तीन अपील की गयी थी– 1) भारतीय अवाम की जागरूकता के लिए हिंद स्वराज और कमाल पाशा की जीवनी जैसी प्रतिबंधित किताबों का प्रचार-प्रसार किया जाएगा, 2) स्वदेशी सामान का अधिक से अधिक उपयोग किया जाएगा और 3) देश में हिंदू मुस्लिम एकता के प्रयास किये जाएंगे.

आठ अप्रैल को गांधी ने पंजाब यात्रा शुरू की थी. ब्रिटिश सरकार गांधी और उनके आंदोलन की लोकप्रियता से घबरा गयी थी. पंजाब जाते समय दिल्ली के पहले कोसी कला रेलवे स्टेशन पर गांधी को रोककर उन्हें वापिस बंबई प्रेजीडेंसी में भेजकर वहीं बने रहने के आदेश जारी किये गये थे ताकि गांधी देश के विभिन्न

इलाकों की यात्रा करके आंदोलन को ज़्यादा हवा नहीं दे सकें.

गांधी ने पत्र लिखकर रवींद्रनाथ टैगोर से भी इस आंदोलन की सफलता के लिए आशीर्वाद चाहा था लेकिन टैगोर ने गांधी के इस निर्णय को उचित नहीं समझा था. पंजाब में गांधी के बंद का व्यापक असर हुआ था. वहां प्रेस पर कड़ा प्रतिबंध था, इस वजह से भी बहुत-सी अफवाहें फैली थीं. अमृतसर में सक्रिय सत्यपाल और सैफुद्दीन किचलू के कारण वहां हिंदू-मुस्लिम एकता का जबरदस्त माहौल था. सरकार ने उन्हें भी पंजाब से बाहर करने के आदेश दिये थे जिससे जनता में बहुत गुस्सा था.

इसी दौरान 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बाग में बैसाखी के पंजाबी त्योहार के कारण स्वर्ण मंदिर आने वाले भक्तों और ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों के खिलाफ़ प्रोटेस्ट करने वालों की सभा के कारण जबरदस्त भीड़ इकट्ठा हो गयी थी. शहर में मार्शल लॉ कानून लागू था. यहां आयोजित सभा ने इस कानून का प्रतिबंध नहीं माना था जिससे जनरल डायर आग बबूला हो गया था और उसने निहत्थे-निर्दोष लोगों की भीड़ पर अंधाधुंध फायरिंग का आदेश देकर लगभग चार सौ लोगों को मौत के घाट उतार दिया था.

गांधी ने यंग इंडिया अखबार में पंजाब की बर्बरता पर लेख लिखने शुरू किये थे. यह अखबार उन दिनों बम्बई से स्थानांतरित होकर अहमदाबाद आ गया था और इसमें विज्ञापन प्रकाशित करना बंद कर दिया गया था जिससे बिना किसी व्यावसायिक दबाव के यह अखबार देश हित के समाचारों को समर्पित किया जा सके.

गांधी अपने बड़े आंदोलन के लिए हिंदु मुस्लिम एकता के प्रयास के अवसर खोज रहे थे.

इसी दौरान लखनऊ के फिरंगी महल के मौलाना अब्दुल बारी ने डॉ. एम. ए. अंसारी की पहल से गांधी के साथ मिलकर भारत के हिंदू मुस्लिम समुदायों की एकता के सामूहिक प्रयास किये थे. इस अभियान में मुसलमानों को बकरीद पर गाय के वध की मनाही की गयी थी क्योंकि उन दिनों इन दोनों समुदायों के बीच झगड़े में गौवध सबसे बड़ा मुद्दा होता था. 17 अक्टूबर 1919 को अखिल भारतीय खिलाफत दिवस में गांधी ने हिंदू समुदाय से मुस्लिम समुदाय के भावनात्मक सहयोग का आह्वान किया था. इस विषय पर गांधी ने नवजीवन में भी लेख लिखने शुरू किये थे. दक्षिण अफ्रीका में गांधी वहां रहने वाले इन दो प्रमुख समुदायों को एकजुट करने में सफल हुए थे. अब गांधी अपना वही प्रयोग एक बड़ी आबादी पर भारत में कर रहे थे.

अक्टूबर में अंततः गांधी को पंजाब

जाने की अनुमति मिली थी. अमृतसर में गांधी एंड्रयूज के साथ वहां की मस्जिद और स्वर्ण मंदिर में भी गये थे. हर जगह उनका भव्य स्वागत किया गया था.

गांधी का कहना था कि अभी हमें जो मिला है हमें उसे स्वीकार कर आगे बाकी मांग करने की नीति अपनानी चाहिए. गांधी इन दिनों ब्रिटिश राज से नाराज़ तो थे लेकिन उससे उनका पूरी तरह मोहभंग नहीं हुआ था.

अमृतसर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन भी काफी हंगामेदार स्थितियों में सम्पन्न हुआ था. इस अधिवेशन में बाल गंगाधर तिलक और चितरंजन दास ने मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार को नाकाफी कहकर खारिज करने की मांग की थी. दूसरी तरफ गांधी का कहना था कि अभी हमें जो मिला है हमें उसे स्वीकार कर आगे बाकी मांग करने की नीति अपनानी चाहिए. गांधी इन दिनों ब्रिटिश राज से नाराज़ तो थे लेकिन उससे उनका पूरी तरह मोहभंग नहीं हुआ था. उनके खिलाफत आंदोलन को सफलता मिली थी, उससे वे काफी उत्साहित थे और उम्मीद करते थे कि ब्रिटिश सरकार यह सब देखकर भारतीयों को स्वराज देने के लिए आगे आयेगी.

एक तरफ पंजाब में दोनों डायर, गवर्नर माइकल ओ डायर और नरसंहार करने वाले जनरल डायर को वायसराय ने साफ बचा लिया था बल्कि गवर्नर माइकल डायर को तो राज के खिलाफ़ आग भड़कने से रोकने के लिए शाबाशी भी दी थी, दूसरी तरफ गांधी की रिपोर्ट में दोनों डायर और वायसराय को भी दोषी ठहराया गया था और ब्रिटिश सरकार से उन्हें वापिस बुलाने, लोगों पर लगाये गये गलत फाइन वापिस करने और प्रशासन के भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिए कहा था. न इस मामले में ब्रिटिश सरकार ने कुछ किया और न खिलाफत मामले में पैरवी करने लंदन गये अंसारी और मोहम्मद अली को कोई लाभ मिला था.

अब कहीं कोई सुनवाई नहीं होती देख गांधी के पास दोबारा बहुत व्यापक पैमाने पर असहयोग आंदोलन शुरू करने का ही एकमात्र चारा था. इसकी तैयारी चार चरण में की गयी थी. सबसे पहले संभ्रांत लोग ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये टाइटल वापिस कर सरकार की नीतियों का विरोध जताएंगे. इसके बाद लोगों को सिविल नौकरी से बाहर निकलने के लिए प्रेरित किया जाएगा. उसके बाद पुलिस के सिपाहियों और आर्मी के जवानों को सेवा से बाहर आने का आह्वान किया जाएगा और अंत में जनता से करों का भुगतान नहीं करने की अपील की जाएगी. इन चार चरणों में हर चरण, पहले चरण से कड़ा होते जाना था. गांधी के प्रस्तावित

आंदोलन से यह साफ दिखाई देता है कि शुरूआत में केवल प्रतीकात्मक विरोध किया जाना था और यदि इससे सरकार पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता तब आंदोलन को इतना तेज़ किया जाएगा जिससे पूरा प्रशासन पंगु हो जाएगा.

1919 में लगभग पूरे साल बाल गंगाधर तिलक मुकदमे के सिलसिले में इंग्लैंड में फंसे थे जिससे वे देश की विस्फोटक गतिविधियों के नेतृत्व के लिए उपलब्ध नहीं हो सके थे. वर्ष के अंत में जब वे कांग्रेस अधिवेशन के समय देश लौटे तो उन्होंने कहा था कि यदि मैं भी यहां होता तो मुझे भी गांधी के आंदोलन में देश सेवा का मौका मिलता.

इधर 1 अगस्त 1920 को मुंबई में तिलक की मृत्यु हो गयी थी. गांधी तिलक की गम्भीर बीमारी का समाचार सुनकर वहां आये थे. इस वक्त तिलक बात करने की स्थिति में नहीं थे. गांधी ने उनके देहांत पर उनकी अर्थी को कंधा दिया था. उसी दिन खिलाफत दिवस भी था. गांधी ने इस आंदोलन की शुरूआत में अपने तीन मेडल वायसराय को वापिस किये थे जो उन्हें बोअर, जूलु और विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिए मिले थे.

सितम्बर में कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन में असहयोग आंदोलन पर खिलाफत और पंजाब मुद्दे के सेशन में एनी बेसेंट, मदन मोहन मालवीय और जिन्ना आदि नेताओं ने विरोध किया था. दूसरी तरफ गांधी के साथ मोतीलाल नेहरू भी पुत्र जवाहर के दबाव में आंदोलन के समर्थन के लिए तैयार हो गये थे. गांधी का प्रस्ताव 1855 बनाम 873 वोट से पारित हुआ था. कांग्रेस में तीव्र मतभेद देखते हुए बी.सी. पाल और सी.आर. दास की मध्यस्थता से यह तय किया गया था कि इस विषय पर कांग्रेस के दिसम्बर में प्रस्तावित नागपुर वार्षिक अधिवेशन में अंतिम फैसला होगा.

गांधी और शौकत अली साथ-साथ देश भर मे हिंदू-मुस्लिम एकता और आंदोलन के लिए महौल बनाने के लिए घूमे थे. अलीगढ़ में ए.एम.यू. में उन्हें ज़्यादा भाव नहीं मिला तो उन्होंने अलीगढ़ में ए.एम.यू. के टक्कर की दूसरी यूनिवर्सिटी शुरू करने की तैयारी की थी जिसके लिए गांधी ने लाहौर के प्रसिद्ध शायर इकबाल को वाइस चांसलर बनने के लिए अनुरोध किया था. इकबाल ने यह प्रस्ताव यह कहकर टाल दिया था कि इस समय मेरे लिए यह सम्भव नहीं है. उन्होंने सुझाव दिया था कि प्रस्तावित युनिवर्सिटी को टेक्निकल यूनिवर्सिटी बनाया जाना चाहिए ताकि युवाओं को रोज़गार मिल सके. इसी के बाद जाकिर हुसैन के नेतृत्व में जामिया मिल्लिया दिल्ली की स्थापना की गयी थी.

गांधी के कुछ सहयोगियों को गांधी और अली बंधुओं का साथ पसंद नहीं था. महादेव देसाई ने शौकत अली के बारे में देवदास को लिखा था कि शौकत अली बहुत शान शौकत दिखाते हैं. शौकत अली वैसे भी हिंसा में विश्वास करते थे और अपनी आक्रामक भाषा के लिए जाने जाते थे लेकिन गांधी के साथ आने पर वे भी अहिंसा के लिए राजी हो गये थे. असहयोग आंदोलन की योजना के धुंआधार प्रचार भ्रमण में गांधी ने छुआछूत की समस्या पर भी कड़ा प्रहार किया था. उन्होंने कहा था कि इसे मिटाना हमारी सामाजिक और नैतिक ज़िम्मेदारी है. गुजरात विद्यापीठ आदि में छुआछूत हटाने की गांधी की मुहिम का काफी विरोध हुआ था.

दिसम्बर का नागपुर का ऐतिहासिक कांग्रेस अधिवेशन पूरी तरह गांधी का शो था. इसमें पूर्व की तुलना में अब तक के सबसे ज़्यादा डेलिगेट, सर्वाधिक मुस्लिम और सर्वाधिक महिलाओं ने शिरकत की थी. गांधी के साथ सब बड़े नेता यथा– मोतीलाल नेहरू और सी.आर. दास आदि थे. बहुत कम नेता आंदोलन के विरोध में बोले थे. जिन्ना जब इसके विरोध में बोले तो जनता ने शेम शेम के नारे लगाये थे. 'गांधी की जय हो' ही अधिवेशन स्थल का प्रमुख नारा बन गया था. गोखले और तिलक के रूप में कांग्रेस के दो शिखर पुरुष पिछले पांच साल के अंतराल में विदा होने से कांग्रेस का शिखर सूना-सा हो गया था. और गांधी इस शून्य को भरने की पूरी तैयारी कर चुके थे. दूसरी तरफ गांधी की लोकप्रियता के कारण ज़्यादातर कांग्रेसी उनकी तरफ ही कांग्रेस के शिखर के शून्य को भरने के लिए देख रहे थे. गांधी ने इन पांच सालों में महानगर तक सीमित कांग्रेस को शहर, कस्बे और गांवों तक पहुंचा दिया था. वही राष्ट्रीय पटल पर एकमात्र सर्व मान्य नेता दिख रहे थे जिनके साथ राजेंद्र प्रसाद, कृपलानी, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू, महादेव देसाई और राजाजी जैसे तेज़ी से उभरे क्षमतावान युवा नेताओं की बेहतरीन टीम बन गयी थी. तिलक के देहावसान से गांधी के लिए कांग्रेस का पूरा मैदान साफ़ था.

इन दिनों गांधी ही कांग्रेस के लिए ज़्यादातर योजनाएं बना रहे थे और लगभग सभी लोग उनके पीछे चलते हुए उनकी योजनाओं को अंजाम देने के लिए यथाशक्ति उनका हाथ बंटा रहे थे. एक तरह से पैंतालीस साल पुरानी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पूरा कायापलट हो गया था. अब कांग्रेस में न कोई अलग से प्रभावशाली नरम दल था और न पुरानी तरह का गरम दल था, यहां तक कि मुस्लिम लीग का भी कांग्रेस से अलग अपना कोई दूसरा बड़ा कार्यक्रम नहीं हो रहा था और अली बंधु और गांधी देश भर

में कांग्रेस और लीग के संयुक्त प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में हिंदू-मुस्लिम एकता और स्वराज के दोहरे उद्देश्य के लिए घूम-घूम कर जगह जगह संयुक्त सभाएं कर रहे थे.

गांधी ने इस बीच कांग्रेस में कई बड़े बदलाव किये थे जिनमें मुख्य निम्न थे–

1. चार आना देकर कोई भी भारतीय कांग्रेस का सदस्य बन सकता है.

2. कांग्रेस की प्रादेशिक समितियों का गठन अंग्रेज़ी राज की प्रेजीडेंसी के आधार पर नहीं होकर विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति के अनुसार किया जाएगा जिससे उनमें समरसता रहे. उदाहरण के तौर पर मद्रास प्रेजीडेंसी की जगह कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी होंगी आदि आदि.

3. कांग्रेस में अभी तक बड़े शहरों के अभिजात्य वर्ग का दबदबा था जिसमें वकील, प्रोफेसर एवं व्यापारी आदि अधिक थे. नयी कांग्रेस में धनिकों से अधिक उनकी अहमियत हो गयी थी जिन्होंने सब कुछ त्यागकर देश सेवा करने का संकल्प लिया है. कांग्रेस अपने कार्यक्रमों के लिए चंदा भी आम जनता से लेने लगी थी.

गांधी के असहयोग आंदोलन में टाइटल्स का लौटाना, सरकारी स्कूलों का शिक्षकों और छात्रों द्वारा बहिष्कार, कोर्ट कचहरी का बहिष्कार, लेजिस्लेटिव कॉन्सिल से त्याग पत्र, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि के साथ चरखा और खादी का प्रचार, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग, हिंदू मुस्लिम एकता, छुआछूत का विरोध आदि विविध रचनात्मक कार्यक्रम जुड़ गये थे.

इस आंदोलन की सफलता के लिए गांधी ने तिलक स्वराज फंड के लिए एक करोड़ रुपए चंदा इकट्ठा करने का लक्ष्य रखा था. गांधी इस फंड में रुपए और जेवर दोनों स्वीकार कर रहे थे. महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए वे महिलाओं को आगे आकर देश सेवा के लिए अपने कीमती जेवर देने और उन्हें शराब की दुकानों के सामने पिकेटिंग के लिए तैयार कर रहे थे.

31 जुलाई 1921 को गांधी ने बम्बई में आयोजित एक बड़ी सभा के सामने विदेशी कपड़ों की होली जलाकर असहयोग आंदोलन को तेज़ किया था. लोगों ने बड़े उत्साह से इसमें भाग लिया था. गांधी के इस आयोजन पर उनके पुराने मित्र सी.एफ. एंड्रयूज ने कड़ी आपत्ति जताई थी. उन्होंने कहा था कि दो साल पहले तक गांधी खुद इसके खिलाफ़ थे लेकिन गांधी ने जवाब में कहा था कि विदेशी वस्त्रों से देश के बुनकरों के परिवारों में भुखमरी फ़ैल रही है और बेरोजगारी के कारण महिलाओं को मजबूरी में वेश्यावृत्ति आदि तक करनी पड़ रही है इसलिए यह विरोध ज़रूरी है.

गांधी देश में अंग्रेज़ी शिक्षा के खिलाफ

भी वातावरण बना रहे थे. एक लेख में गांधी ने लिखा था कि यदि राजा राममोहन राय और तिलक आदि अपने भाषणों और लेखों में अंग्रेज़ी की बजाय अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते तो उनका काम और तेज़ी से आगे बढ़ जाता. गांधी के इस लेख पर टैगोर ने राम मोहन राय पर गांधी की टिप्पणी की कड़ी आलोचना करते हुए कहा था कि गांधी अपनी आइडियोलॉजी पर बेहद मुग्ध हैं. ऐसी गलती से महान लोग भी नहीं बच पाते.

टैगोर गांधी के लेखों और आंदोलन में पश्चिम का विरोध, नकारात्मकता और नफरत का भाव देखते थे, इसलिए वे उनसे इन मुद्दों पर सहमत नहीं थे. गांधी ने उन्हें जवाब में कहा था कि वे पश्चिम के लिए अपने मस्तिष्क के दरवाज़े खिड़की खुले रखते हैं लेकिन उसकी आंधी में नहीं उड़ते.

आंदोलन के दौरान इस्तेमाल किये गये गांधी के तौर-तरीके आम जनता की नज़र में सही थे. आंदोलन को तेज़ी से लोकप्रिय करने के लिए गांधी सबको साथ लेने के लिए अपने सिद्धांतों को भी लचीला कर रहे थे. विदेशी कपड़ों की होली जलाने का आयोजन उन्होंने क्रांतिकारियों को साथ लाने के लिए किया था. इसी तरह अली बंधुओं को वे धार्मिक एकता के लिए साथ लेकर चल रहे थे, जबकि फ़ैजाबाद और भरूच की सभा में अली बंधुओं ने इस्लाम बचाने के लिए यहां तक कह दिया था कि यदि अफगानिस्तान के मुस्लिम शासक भारत पर आक्रमण करेंगे तो हम धर्म के लिए उनका साथ देंगे. अभी हमने केवल स्वराज के लिए ही हथियार छोड़े हैं. गांधी के लिए इस तरह के बयान भी आलोचना का करण बनते थे.

ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ इन भड़काऊ बयानों से अली बंधुओं की गिरफ़्तारी की नौबत आ गयी थी. मदन मोहन मालवीय के अनुरोध पर गांधी ने नये वायसराय लॉर्ड रीडिंग से शिमला में वार्ता कर अली बंधुओं से इस बारे में एक बयान जारी कराया था. गांधी के इस कदम से अब्दुल बारी गांधी से नाराज़ हो गये थे. गांधी के लिए बहुत सारे अलग-अलग लोगों के समूह को एकजुट कराना आसान नहीं था लेकिन गांधी भी आसानी से हार मानने वाले नही थे. गांधी की पहल पर शुरू हुई हिंदू मुस्लिम एकता सतही नारों में अधिक दिखाई देती थी और मुस्लिम नेताओं के दिलों में इसका कम असर पड़ा था. बाद की घटनाओं से यह साफ़ हो जाता है कि गांधी अति उत्साह में इस पर ज़्यादा ज़ोर दे रहे थे. राजनीति में धर्म की घालमेल से जिन्ना भी गांधी से सहमत नहीं थे. जिन्ना इन दिनों साम्प्रदायिकता के पक्ष में नहीं थे इसलिए वे खिलाफत आंदोलन में सक्रिय नहीं थे. ❑

'हिमालय जैसी भूल' के बहाने

● भीखू पारेख

महात्मा गांधी वे पहले नेता थे जो भारत को विश्व पटल पर लाये थे, और वही पहले नेता भी थे जिन्होंने भारत से पहले भारत से बाहर अपनी राजनीतिक छाप छोड़ी थी. एक चौथाई सदी तक भारतीय राजनीति में उनका बोल-बाला रहा था, और जीवन के हर पहलू पर उनके पास कहने के लिए कुछ था. उन्होंने ज़िंदगी को हर स्तर पर छुआ. प्रभावित किया. लेकिन यह भी एक सचाई है कि जिस आज़ादी के लिए उन्होंने इतनी लम्बी लड़ाई लड़ी थी, वह जब मिली तो गांधी तिरंगा फहराने के लिए राजधानी में नहीं थे, वे सब तरफ फैली हिंसा से इतने क्षुब्ध और दुखी थे कि उन्होंने उस मौके पर कोई संदेश देने से भी इंकार कर दिया. अपने जीवन के आखिरी दो साल उन्होंने साम्प्रदायिक हिंसा की आग बुझाने में लगा दिये. अस्वस्थता के बावजूद उन्होंने उपवास किये, नोआखली जैसी जगह पर जाकर अमन और अहिंसा का संदेश दिया.

यह एक सचाई है कि अपनी सीमाओं के बावजूद अनेक क्षेत्रों में महात्मा गांधी प्रेरणा के स्रोत बने, शिक्षक बन कर समझाने में सफल रहे. यही बात उन्हें बीसवीं सदी के महानतम लोगों की श्रेणी में ला बिठाती है. दक्षिण अफ्रीका में उनके साथ जिस

तरह की ज़्यादतियां हुईं और आदमी पर आदमी के अत्याचार के जो उदाहरण उन्होंने देखे, उनपर गांधी ने गहराई से विचार किया था. उन्होंने इस सब में दमन करने वालों की नहीं, दमन का शिकार बनने वालों की भूमिका पर भी विचार किया, और उनका निष्कर्ष था कि दमन के पीड़ितों का भी इसमें दोष है. उनका तो यह भी मानना था कि पीड़ितों की भी दमन में कहीं न कहीं भागीदारी थी. गांधी का मानना था कि अंग्रेज़ों ने भारतीयों की मदद से ही भारत पर शासन किया. आखिर जलियांवाला बाग में भारतीयों पर गोली चलाने वाले भारतीय सिपाही ही तो थे. इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने यह सोचा कि अंग्रेज़ों को यह सारी ताकत पीड़ितों की मदद से ही तो हासिल हुई थी. यह ताकत साधारण व्यक्तियों की ही थी, अर्थात यह ताकत उनकी थी और ज़रूरत इस बात की थी कि वे साधारण जन अपनी यह ताकत आज़ादी की खातिर दिखाएं. आम भारतीय को अपने मालिकों को सहयोग करने से इन्कार करना होगा. गांधी का मानना था कि ज़्यादातर लोग डर के कारण ऐसा नहीं कर पा रहे. दक्षिण अफ्रीका में गांधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जो खुद कीड़े-मकोड़ों की तरह व्यवहार करते हैं उन्हें किसी को यह दोष देने का अधिकार नहीं है कि उनके साथ गलत व्यवहार हो रहा है. एक और संदर्भ में उन्होंने यह भी कहा था कि 'हिंदुस्तानियों को अपने खिलाफ़ बगावत करना' सीखना होगा. साहस और आत्मसम्मान को एक-दूसरे से सम्बद्ध मानने वाले गांधी के लिए साहस एक महान मानवीय गुण था. वे जीवन भर इस कोशिश में लगे रहे कि अन्याय के शिकार होने वालों में वह आत्मसम्मान कैसे जगाएं कि उनके मन में अन्याय के खिलाफ़ खड़े होने का साहस पैदा हो. इसी संदर्भ में नेहरू ने कहा था कि गांधी ने भारत को जकड़े हुए डर की चादर को हटाया था.

इसी तरह अहिंसा के संदर्भ में भी गांधी इस समझ को मिटाना चाहते थे कि नुक्सान न पहुंचाना मात्र ही अहिंसा है. गांधी कहते थे अहिंसा का सही अंग्रेज़ी अनुवाद 'नॉन-वायलेंस' नहीं, बल्कि करुणा या प्यार है. इसके साथ ही गांधी का यह भी मानना है कि दूसरों का अपमान करना, उनके आत्म-सम्मान पर ठेस पहुंचाना, ज़बर्दस्ती कड़े फैसले थोपना और मानसिक क्रूरता भी हिंसा के ही अलग-अलग रूप हैं.

गांधी की अहिंसा सत्याग्रह के आचरण पर आधारित थी. उनके लिए सत्याग्रह अपने को पीड़ा देकर दूसरे को बदलने की एक प्रक्रिया है. वे उसे आत्मा की चीर-फाड़ कहते थे. सत्याग्रही जिसे अपनी समझ से सही मानता है, उसके आधार पर यह तय करता है कि उसे क्या रुख

अपनाना है. इसके साथ ही संघर्ष के प्रकाश में विचारों के परिवर्तन की सम्भावना के लिए भी दरवाज़े खुले रहते हैं. वे विरोधी की अंतरात्मा को कुरेदते थे, उसके मन और मस्तिष्क, दोनों को खोलते थे. वे चाहते थे कि उनका विरोधी न्यायसंगत समाधान की खोज में उनका सहयोग करे.

गांधीजी धार्मिक थे, पर कट्टरपंथी या धर्मांध नहीं. कोई भी धर्म उनके लिए पूर्ण नहीं था. वे उसे मानवीय तर्क और अनुभव की कसौटी पर कसने का आग्रह करते थे. ऐसे हर धर्म को वे सम्मान का अधिकारी मानते थे. वे यह भी मानते थे कि हर धर्म को दूसरे से सीखने के लिए तैयार रहना चाहिए, उससे विनम्रता से पेश आना चाहिए. वे कहते थे उदात्त विचारों को सब ओर से अपने पास आने देना चाहिए. विचारों के ताज़ा झोंकों के लिए वे अपने घर की खिड़कियां खुली रखते थे. धर्म के बारे में उनके ये विचार आज की दुनिया के लिए पूरी तरह प्रासंगिक हैं.

राजनीतिक नेतृत्व के बारे में भी गांधी का सोच बिल्कुल स्पष्ट था. वे जानते थे कि जनता नेता से क्या अपेक्षा करती है और उसकी सीमाएं क्या हैं. जब उन्हें लगा कि उनका असहयोग आंदोलन पथ-भ्रष्ट हो गया है तो उसे उन्होंने हिमालय जैसी भूल कहा था और अपने सहयोगियों के भारी विरोध के बावजूद उन्होंने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया था. नेतृत्व का यह उदाहरण अनोखा है. इतिहास में शायद ही कोई और ऐसा नेता होगा जिसने इस तरह खुलेआम अपनी गलती मानी हो, और स्वयं को सुधारने की कोशिश की हो. यह भी ज्ञातव्य है कि साम्प्रदायिक हिंसा के बारे में भी गांधी के कुछ ऐसे ही विचार थे. 1946 और 1948 के दौरान हुई साम्प्रदायिक हिंसा को देखकर उन्हें लगा था कि वे इस ओर उतना ध्यान नहीं दे पाये जितना उन्हें देना चाहिए था. उन्होंने अपनी इस 'गलती' को स्वीकारा और इसे सुधारने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा दी.

भारत के आखिरी वायसराय लार्ड माऊंटबेटन ने जवाहरलाल नेहरू से कहा था कि गांधी इतने मनुष्य थे कि वे संत नहीं हो सकते थे. सीमाएं हर मनुष्य में होती है, गांधी में भी थीं. पर इन सबके बावजूद गांधी के विचारों में इतनी क्षमता है कि वे हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकें. इन विचारों से हम प्रेरणा ले सकते हैं. हमें कृतज्ञता के साथ गांधीजी के विचारों को समझने की कोशिश करनी चाहिए. उनकी जो भी बातें हमें उचित लगें, भरोसे लायक लगें, उन्हें स्वीकार करना, उनसे प्रेरणा लेना गांधी को सच्ची श्रद्धांजलि होगी.

(यूनिवर्सिटी ऑफ हल, यूके, में पालिटिकल फिलासफी के प्रोफेसर भीखू पारेख के आलेख के महत्वपूर्ण अंश– साभार)

गांधीजी का सत्याग्रह

● सिद्धेश्वर प्रसाद

धीजी वामन के रूप में इस धरती पर अवतरित हुए और विराट के रूप में सारी धरती पर छा गये. इस आधुनिक युग में यह चमत्कार कैसे सम्भव हुआ? गांधीजी आजीवन सेवक रहे. दक्षिण अफ्रीका में श्वेतों की रंगभेद की नीति के विरुद्ध उन्होंने जिस सत्याग्रह का आरम्भ किया, यह उनके जीवन की अंतिम सांस तक अनवरत चलता रहा.

गांधीजी द्वारा रचित इस एकमात्र कविता से ही उन्हें उनकी पूर्णता में सही-सही समझा जा सकता है. सेवक की प्रार्थना–

'हे नम्रता के सागर!
दीन भंगी की हीन कुटिया के निवासी.
गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र के जलों से सिंचित
इस सुंदर देश में
तुझे सब जगह खोजने में हमें मदद दे,
तेरी अपनी विनम्रता दे,
हिंदुस्तान की जनता से
एकरूप होने की शक्ति और उत्कंठा दे.
हे भगवन! तू तभी मदद के लिए आता है
जब मनुष्य शून्य बनकर तेरी शरण होता है.
हमें वरदान दे कि सेवक और मित्र के नाते
जिस जनता की हम सेवा करना चाहते हैं,
उससे कभी अलग न पड़ जाएं.
हमें त्याग, भक्ति और नम्रता की मूर्ति बना,
ताकि
इस देश को हम ज़्यादा समझें और ज़्यादा चाहें

पुरुष सूक्त के विराट रूपक का यहां युगानुरूप भावना के अनुरूप कायाकल्प हुआ है. नारायण और मोहन में कितना अंतर है? अगर पुरुष सूक्त के देवता पुरुष हैं तो इसके हैं दीन भंगी की हीन कुटिया में रहने वाले नम्रता-सागर. निश्चय ही सेवक की इस प्रार्थना में वैदिक ऋषि का विराट संस्पर्श, औपनिषदिक ऋषि की सूक्ष्मता और पौराणिक कल्पना का ऐश्वर्य नहीं है, पर इन सबका आधार वह नारायण रूप तो है, ईशावास्य रूप तो है, 'उत्तिष्ठत' जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत की वह विराट संकल्प-शक्ति तो है जिसके बल पर हीन कुटिया के निवासी दीन भारतीय भंगियों ने विश्व के ऐश्वर्य के प्रतीक विलायती सम्राट को भारत छोड़कर चले जाने के लिए विवश कर दिया.

गांधीजी का विराट पुरुष पौराणिक

ऐश्वर्य पुरुष नहीं है बल्कि 'ईशावास्यमिदं सर्वं' का विश्व रूप विराट है जिसकी 'महतोमहीयान' रूप की अर्चना होती आयी है परंतु 'अणोरणीयान्' को देखने की दिव्यदृष्टि विकसित नहीं की गयी. ऐसा इस भ्रांत धारणा के कारण हुआ कि स्थूल शरीर की पशु-शक्ति ही प्रबल और अंतिम निर्णायक है तथा सूक्ष्म की आत्मिक शक्ति की उपेक्षा कर भी जीवन जिया जा सकता है, भोग और ऐश्वर्य की सभ्यता विकसित की जा सकती है.

ऊपर-ऊपर से यह तर्क उचित प्रतीत होता है, पर वस्तुत: इसमें कोई जान नहीं है. मनुष्य के स्थूल शरीर की पशु-शक्ति का विकास ही यदि सृष्टि का प्रयोजन होता तो मनुष्य से शक्तिशाली अन्य अनेक जीव क्यों नष्ट और लुप्त हो गये? संसार के विभिन्न भागों में जो विशालकाय जीवाश्म मिल रहे हैं वे लुप्त हो गयी प्रजातियों के ही तो हैं!

इतना ही नहीं, यदि प्रकृति का उद्देश्य शारीरिक विकास को ही महत्त्व देना होता तो लाखों-करोड़ों वर्षों में संरचना की दृष्टि से कोई श्रेष्ठतर मानव-प्रजाति क्यों नहीं विकसित हुई? सृष्टि के सभी जीवों में मानव ही अभी तक क्यों श्रेष्ठतम है! मनुष्य की श्रेष्ठता को लोग डार्विन के पहले से जानते-मानते आये हैं. ऐतरेय, ब्राह्मण (पुरुषो वान सुकृतम्), विवेक चूड़ामणि (जंतूना नरजन्म दुर्लभम्) शंकराचार्य तथा महाभारत (न मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्' आदि इसके प्रमाण हैं.

अत: विकास मनुष्य के स्थूल शरीर का नहीं उसके मन का होना है. यही काम्य है. मन के विकास का अर्थ है मन का संस्कार.

इस क्षेत्र में गांधी जी का कार्य, उनकी देन, विश्व-इतिहास में अप्रतिम है. उनकी रचित 'सेवक की प्रार्थना' विकास के उस ऊर्ध्वारोहण का गायत्री मंत्र है, आधुनिक शब्दावली में कहें तो 'कुटिया का घोषणापत्र है, चिंतन की भाषा में नवीन जीवन-दृष्टि है' साहित्यशास्त्र की कसौटी पर 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' के पश्चात मात्र सोलह पंक्तियों में रचित विश्व का श्रेष्ठतम काव्य है जिसमें मानव-जीवन और मानव-समाज की सम्पूर्णता की प्राप्ति की अभीप्सा अभिव्यक्त है.'(लेखक की 'आस्था-पुरुष', पृ. 35-36)

सत्याग्रह में मनुष्य को वामन से विराट बनाना ही शक्ति है. सत्याग्रह ने केवल गांधीजी को ही नहीं बल्कि भारत की दीन कुटिया में निवास करने वाले करोड़ों भारतीयों को विराट बना विलायती सरकार को भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया. यह व्यष्टि भाव का समष्टि भाव में 'ज्यात्यंतर' विकास (योगसूत्र, पतंजलि) था जिसे देख-सुनकर सारा संसार आजतक चकित है. सत्याग्रह व्यष्टि और समष्टि के

सह-ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया है, इसे गांधीजी ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से चरितार्थ कर दिया.

मनुष्य के लिए शरीर-सुख के मोह से उठना सरल नहीं होता. परंतु गांधीजी ने इस असम्भव को सम्भव कर दिखाया, क्योंकि करोड़ों 'दीन' भारतीयों को उनकी 'हीन' दशा से ऊपर उठाने के लिए उन्होंने वैदिक परम्परा की विद्या और अविद्या की सह-साधना को युगानुरूप (युगानुरूपो धर्मः– मनु) कायाकल्प करने के लिए भारत के भौतिक और आध्यात्मिक विकास की सह-साधना का जो मार्ग दिखाया उस पर करोड़ों भारतीयों ने चलकर सारे संसार को आश्चर्य में डाल दिया. उनके इसी कार्य ने आइंस्टीन को गांधीजी के कार्य का प्रशंसक बना दिया.

गांधीजी ने सुप्त भारत को जगाने के लिए अनासक्ति योग के रूप में गीता की न केवल व्याख्या की बल्कि अपना सारा जीवन सत्य के प्रयोग के लिए अर्पित कर दिया.

● ● ●

गांधीजी के लिए सत्याग्रह आपद् धर्म नहीं बल्कि सहज स्वाभाविक धर्म है. इसी के कारण मनुष्य, सृष्टि के अन्य प्राणियों से भिन्न है. जैसा कि कहा जा चुका है, ऋषिगण अपने प्रयत्न से मनुष्य से देवता बन गये. भारतीय परम्परा की विशेषता इसी में निहित है. यह प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समूह को ऊपर उठने का पर्याप्त अवसर प्रदान करता है. भारतीय परम्परा की इस विशिष्टता को पाश्चात्य पंडित और उनके भारतीय अनुयायी समझ ही नहीं पाये क्योंकि पाश्चात्य परम्परा में हर परिवर्तन रक्त-रंजित रहा है. समय के अंतराल से भारतीय परम्परा पर तो धूल जम गयी थी उसे झाड़-पोंछकर गांधीजी ने न केवल उसे चमकाया बल्कि शक्तिशाली भी बना दिया. तभी भारतीय लोकतंत्र ने संसार में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है.

आवश्यकता है प्रत्येक मनुष्य की सुप्त शक्ति को जाग्रत करने की. यह स्वभाव की चेतना है. गीता 'स्वभावो अध्यात्मुच्यते' (गीता, 8-3) कहकर इसकी महत्ता को स्पष्ट कर देती है. परंतु मनुष्य प्रमादवश इसका विस्मरण करता आया है. महाभारत-युद्ध में अर्जुन का मोह-भंग करने के लिए कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया था, गांधीजी ने सुप्त भारत को जगाने के लिए अनासक्ति योग के रूप में गीता की न केवल व्याख्या की बल्कि अपना सारा जीवन सत्य के प्रयोग के लिए अर्पित कर दिया. उन्होंने अपनी आत्मकथा का नाम 'सत्य के प्रयोग' रखा है. लेकिन इस दृष्टि से उनका अध्ययन किया ही नहीं जाता है. इस नाम से ही यह

स्पष्ट हो जाता है कि गांधीजी की दृष्टि पूर्णतया वैज्ञानिक थी. यह दृष्टि उन्हें वैदिक काल से चली आ रही भारतीय परम्परा से ही प्राप्त हुई थी. वैदिक ऋषियों के गुरुकुल या आश्रम वस्तुत: प्रयोगशालाएं थीं जिनमें ऋषि शिष्यों को साधना के सोपान पर निरंतर ऊपर उठते जाने का मार्ग बताते थे जिससे आत्मज्ञान प्राप्त होता था. योग-सूत्र में पतंजलि ने जिसे 'जात्यान्तरपरिणाम' कहा है वह कैसे होता है? पतंजलि ने कहा है– प्रकृत्यापूरात् अर्थात प्रकृति के पूर्ण होने से अपने कृतित्व से गांधीजी ने इस पथ को प्रशस्त किया.

जो जहां जिस अवस्था में है उसमें पूर्णता प्राप्त कर लेने के पश्चात ही उससे ऊपर की श्रेणी में उसका प्रवेश सम्भव होता है. यह चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत जैसा है. विद्यार्थी जब प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो जाता है तब द्वितीय श्रेणी में वह प्रवेश पाने की पात्रता प्राप्त कर लेता है. व्यष्टि और समष्टि दोनों पर प्रकृति का यह नियम समान रूप से लागू है.

व्यष्टि जब अपने तप-बल से ऊपर उठता है तब यह कार्य वह अपने गुरु के निर्देश में सम्पन्न करता है. समष्टि के स्तर पर जब यह सम्पन्न होता है तो इसे युग-परिवर्तन कहा जाता है. जब महात्मा गांधी ने सत्याग्रह-आंदोलन के बल पर इस कार्य को सम्पन्न किया तो इस काल-खंड को गांधी-युग कहा गया है. उनके सत्याग्रह-आंदोलन से एक ओर भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई तो दूसरी ओर संसार में लोकतंत्र की शक्ति सबल हुई. यह प्रतिक्रिया अभी चल रही है क्योंकि अभी वैश्विक दृष्टि से इसे पूर्णता नहीं प्राप्त हुई है.

सत्य के प्रयोग में उन्होंने अहिंसा को क्यों महत्त्व दिया? क्योंकि उनकी लोकतंत्र में निष्ठा थी. हिंसा का आश्रय लेकर चलने वाला तंत्र लोकतंत्र नहीं हो सकता. यह तो 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का तंत्र है. पाश्चात्य परम्परा का तथाकथित लोकतंत्र वस्तुत: धनतंत्र है जो धन के पोषण से जन्म लेता है और उसी के लिए जीता है. धनतंत्र लोकतंत्र के नाम पर जो युद्ध लड़ता है उसमें संयम और नीति के लिए कोई स्थान नहीं है. चाहे जैसे हो, युद्ध को जीतना है.

'सेवक की प्रार्थना!' शीर्षक कविता में गांधीजी ने प्रार्थना की है कि हे भगवान्! हमें सेवक की नम्रता दे. वे अपने जीवन को राममय बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे. गोली लगने के बाद के उनके अंतिम शब्द थे– 'हे राम!'. वे शून्य हो चुके थे और अंत में अपने को महाशून्य में लय कर दिया. जायसी ने कहा था– 'बूंद समानी समुंद में, केहि विधि हेरी जाया.' मानव-इतिहास के सबसे महान मानव ने इस प्रकार अपनी लीला समाप्त कर दी.

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने आकाशवाणी पर अपनी श्रद्धांजलि देते हुए कहा था– 'हमारे बीच से वह रोशनी चली गयी. नहीं! नहीं!! वह सदा हमारे बीच रह कर हमारा मार्ग-दर्शन करती रहेगी.'

बात ठीक है. संसार के सभी देशों ने गांधीजी पर स्मारक डाक टिकट निकाला है. कारण, हर मनुष्य के हृदय में कोई तार है जिसे गांधीजी स्पर्श करते हैं, उसकी सुप्त चेतना को जन्म देते हैं.

मनुष्य के हृदय में सत्-असत्, अंधकार-प्रकाश, उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म का संघर्ष सदा चलता रहता है. गांधीजी ने सत्याग्रह का जो मार्ग अपनाया वह सर्व-जन-सुलभ है. आवश्यकता है अपनी संकल्प-शक्ति को जाग्रत करने की. गांधीजी के नेतृत्व में भारत की इस सत्याग्रही सेना ने विलायती साम्राज्य की सशस्त्र सेना को भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया.

सत्याग्रह का मार्ग हर व्यक्ति, हर समाज, हर राष्ट्र, हर धर्म के लिए समान रूप से सुलभ है. अपने भीतर संकल्प-शक्ति को विकसित कर मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है. भारत में वैदिक युग से यह साधना चली आ रही है जिसे गांधीजी ने युगानुरूप नवजीवन दिया.

सत्याग्रही जीवन किसी व्यक्ति पर ऊपर से थोपी हुई कोई बाहरी वस्तु नहीं है. हर व्यक्ति को अपनी संकल्प-शक्ति स्वयं विकसित करनी होती है. जब गांधीजी ने ऐसा किया तो करोड़ों भारतीय उनके पीछे चल पड़े. इससे न केवल भारत स्वतंत्र हुआ बल्कि इससे सारे संसार को प्रेरणा मिली.

कुछ लोगों को लगता है कि इंद्रिय-जय का मार्ग गांधीजी जैसे महात्मा के लिए है, सामान्य मनुष्य के लिए नहीं. संसार के सबसे महान राजनीति-शास्त्रकार चाणक्य ने कहा है– राज्य मूलं इंद्रियजयः. (राजसत्ता का मूल है इंद्रिय जय.) इसी के बल पर उन्होंने चंद्रगुप्त जैसे एक साधारण बालक को तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षित कर भारत का सम्राट बनाया, जिसने विश्व-विजय का सपना देखने वाले सिकंदर को ऐसा घायल किया कि घर वापसी के रास्ते बेबिलोन में ही वह मर गया. लेकिन आधुनिक समाज चार्वाक, का अनुयायी होकर ऋण ले-लेकर भी घी पी रहा है. (ऋणं कृत्वा घृतम् पीवेत्) यह स्थिति भयावह है.

गांधीजी को लोकसंग्रह का मार्ग गीता से प्राप्त हुआ परंतु उसे युगानुरूप रूप देने की अद्भुत क्षमता थी उनमें, जिसके कारण उनके हाथों लोकसंग्रह-कार्य के माध्यम से राजनीति के नये युग का आरम्भ हुआ.

अभी पर्यावरण-असंतुलन को लेकर सारा संसार चिंतित है. मार्ग एकमात्र वही है जिसे गांधीजी ने अपनाया और जीवन-पर्यंत जिस पर वे चलते रहे. लेकिन आधुनिक मनुष्य अभी अपने मार्ग को बदलने के लिए तैयार नहीं है.

तो अंतत: प्रकृति उसे इसके लिए विवश करेगी.

गीता (3.20) में कर्म में मुक्ति पाने वालों के प्रसंग में जनक का नाम आया है जिन्होंने लोकसंग्रह का कार्य करते हुए मोक्ष को प्राप्त किया. गांधीजी को लोकसंग्रह का मार्ग गीता से प्राप्त हुआ परंतु उसे युगानुरूप रूप देने की अद्‌भुत क्षमता थी उनमें, जिसके कारण उनके हाथों लोकसंग्रह-कार्य के माध्यम से राजनीति के नये युग का आरम्भ हुआ. वस्तुत: यह भारतीय परम्परा का नवोत्थान है जिसे गांधीजी ने अपने प्रयोगों से नवजीवन प्रदान किया. परम्परा के मृत अंश को त्यागने और प्राणवान अंश को पहचानकर उसे सत्याग्रह का अंश बनाने की उनमें अप्रतिम क्षमता थी. गांधीजी के सत्याग्रह में प्रमाद के लिए कहीं कोई स्थान नहीं था. जो चौरीचौरा कांड (गोरखपुर, 1921) हुआ, उससे गांधीजी को लगा कि देश अभी सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है. अत: उन्होंने उस हिंसा के पश्चात आंदोलन को स्थगित कर दिया. इससे गांधीजी के जवाहरलाल जैसे हज़ारों अनुयायी बहुत दुखी हुए. भागवत पुराण में आता है कि ब्रजमंडल को दावानल से बचाने के लिए श्रीकृष्ण ने उस आग को पी लिया. गांधीजी का यह काम वैसा ही था. उन्होंने चौरीचौरा कांड की आग को पीकर भारतीय प्रजातंत्र को नवजीवन प्रदान किया. आज भारत में लोकतंत्र है, परंतु इसके चारों ओर कहीं नहीं. सच बात तो यह है कि भारत जैसा सर्वसमावेशी लोकतंत्र संसार के किसी देश में नहीं है. यहां जवाहरलाल के जैसा सम्पन्न परिवार का व्यक्ति भी प्रधानमंत्री हो सकता है और लाल बहादुर शास्त्री के जैसा एक साधारण परिवार का व्यक्ति भी. अमेरिका में अब्राहम लिंकन के पश्चात कोई 'साधारण' परिवार का व्यक्ति राष्ट्रपति नहीं हुआ, परंतु पारत में आज भारत के नरेंद्र मोदी के जैसा एक साधारण परिवार का व्यक्ति प्रधानमंत्री है.

भारत में कैसे ऐसा सम्भव हो रहा है? महात्मा गांधी की वैदिक युग से चली आ रही विद्या और अविद्या की सह-साधना को युगानुरूप अपनाने के कारण. गांधीजी केवल भाषण नहीं देते बल्कि देश-भर में गांव-गांव में ऐसे लाखों कार्यकर्ताओं को तैयार किया, जो उनके मार्ग पर चलने के लिए अपना जीवन अर्पित कर चुके थे. मुंडकोपनिषद् में जिस अप्रमाद और शरवत् तन्मयता की बात की गयी है उसे गांधीजी ने साकार कर दिखाया. तभी भारत का लोकतंत्र जीवंत और सतत गतिशील है.❑

कहानी

विस्थापन

● गंगाशरण सिंह

गर्मियों की अलसायी हुई, उमस भरी धूसर सांझ. उदासी और तन्हाई से लबरेज़. परछाइयां धीरे-धीरे लम्बी हो चली थीं. आकाश में तैरते बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े ढलते सूरज की रंग-बिरंगी किरणों का स्पर्श पाकर विविधवर्णी हो गये थे. दिन और रात की ये संधि वेला उसे अक्सर बेचैन कर जाती थी. खुले आसमान के नीचे तो शाम का ये वक्त अच्छे से गुज़र जाता था पर बंद दरवाज़ों के बीच अक्सर बोझिल हो उठता...

जेल की चारदीवारी के भीतर गुज़रते ये दिन कल सुबह अतीत बन जायेंगे.... अपनी दुनिया से निर्वासित होकर बिताये गये निष्क्रिय, व्यर्थ आठ साल जो स्मृतियों के कैनवास पर इस कदर बेरंग से बिखरे पड़े हैं कि कभी उन पर यादों की कूची फिराने का मन नहीं हो सकेगा. इंसान की छोटी-सी ज़िंदगी में आठ वर्षों की कितनी अहमियत होती है! पर दुर्भाग्य के लम्बे हाथ किसी न किसी तरह इंसान के जीवन में दीमक लगा ही जाते हैं!

अफ़सोस के कई ऐसे लम्हे हैं जो अनवरत अवचेतन मन में चलते रहते हैं. कभी-कभी लगता है कि काश ये सब एक दुस्वप्न होता. नींद खुलती और... जागने के साथ ही इन दुखों का अंत हो जाता.

उस सड़क दुर्घटना में जिस शख्स की मृत्यु हुई थी क्या वह मात्र एक व्यक्ति का अंत था या फिर उससे जुड़े अन्य तमाम लोगों के सपने, उनकी खुशियों और उनके भविष्य का भी अंत था. प्रत्यक्ष रूप से यद्यपि वही शख्स दोषी था जो दौड़कर सड़क पार करने के चक्कर में खुद उसकी मोटर साइकल के नीचे आया था, पर अपराधबोध से ग्रस्त उसका मन प्रायः ये सोचने लगता था कि यदि उसके वाहन की गति थोड़ी कम रही होती क्या तब भी ये दुर्घटना इतनी भयावह होती? एक पल की चूक से दो जीवन नष्ट हो गये.

...बिटिया आस्था कितनी बड़ी हो गयी होगी अब तक. मुश्किल से दो बरस की थी जब उसे सज़ा सुनाई गयी थी. जिस उमर में बच्चों के साथ-साथ हमारा बचपन भी वापस लौट आता है उसी उम्र में ऐसा दुर्योग आया कि ये सारे बेशकीमती दिन

व्यर्थ बीत गये. बेटी को देखने के लिए मन कभी-कभी बहुत परेशान होता था पर स्वयं उसने ही पत्नी दीप्ति को मना कर रखा था कि कभी उसे यहां न लाये. बच्चों के पास जिज्ञासाओं का अनंत संसार होता है. उसके यहां होने के बारे में वो यकीनन सवाल कर बैठती और फिर उसे समझाना बहुत कठिन होता.

एकाध महीने से घर का कोई समाचार उसे नहीं मिल सका जबकि उसने रिहाई की तिथि निश्चित होते ही खत भेज दिया था. शायद इसीलिए आजकल उसके मन में एक अजीब-सी उदासीनता भरती चली गयी.

इतने वर्षों में दीप्ति बमुश्किल तीन - चार बार ही मिलने आयी वो भी शुरू के सालों में. निखिल ने जैसे ही उसके आने के पीछे छुपी औपचारिकता और अनिच्छा को समझा, उसने उसे आने से मना कर दिया. कभी कभार उसकी चिट्ठियां आ जाती थीं तो घर का हालचाल मिल जाता था. छुट्टियों में अरविंद भी मिलने आया कई बार और उसके आने से निखिल को वाकई खुशी होती थी. कुछ लोग ऐसे भी होते हैं कि वो जहां पहुंच जाएं वहां का मौसम खुशगवार हो उठता है.

जेल के साथियों ने उसे नम आंखों से अलविदा कहा और आगामी जीवन की शुभकामनाएं दीं. एक थैले में समाये अपने सारे सामान के साथ बाहर निकला तो ऐसे लगा जैसे किसी और दुनिया की तस्वीर सामने प्रकट हो गयी हो. बरसों बरस हम एक चारदीवारी में कैद हों तो बाहरी दुनिया का तसव्वुर धुंधला पड़ता जाता है. रहता सब कुछ वही है पर एक अजनबीयत का आवरण बीच में आ जाता है. मेन रोड लगभग दस मिनट की दूरी पर था.

सड़क के किनारे घने पेड़ों के नीचे चलते हुए कहीं सुदूर किसी रेडियो पर बर्मन दा की मार्मिक आवाज़ में बजते शैलेंद्र के कालजयी गीत की ये पंक्तियां सहसा सुनाई पड़ीं..

कहते हैं ज्ञानी, दुनिया है फ़ानी
पानी पे लिखी लिखायी
है सबकी देखी, है सबकी जानी
हाथ किसी के न आयी
कुछ तेरा ना मेरा, मुसाफ़िर जायेगा कहां

बरबस ही गाइड का वो दृश्य याद आ गया जब देव आनंद जेल से बाहर निकलकर एक अनिश्चित गंतव्य की तरफ़ चलते रहते हैं और इसी तरह पार्श्व में ये गीत चलता रहता है. इस समय इस गीत का यूं सुनाई पड़ जाना भी अजब-सा संयोग लगा. देवानंद द्वारा निभाये राजू गाइड के उस किरदार के बारे में सोचकर मन जाने कैसा हो आया. मुद्दतों बाद कोई अपने घर लौटे और घर पर कोई इंतज़ार करने वाला ही न हो तो इंसान किस साहस से अपने ही घर की देहरी लांघे

और अपनी वापसी का जश्न मनाये? उदासी के इन्हीं लम्हों में बरबस ये खयाल भी मन में तैर आया कि इसी दुनिया में जाने कितने लोग ऐसे भी हैं जिनके नसीब में सिर छुपाने को न तो घर है न ही किसी की इंतज़ार करती आंखें.

दोपहरी का सूरज सिर पर तप रहा था और तीखी धूप शरीर में कांटों जैसी चुभ रही थी. घर के सामने पहुंचते ही पांव बरबस ठिठक गये. घर के दरवाज़े पर ताला लटका था. नज़र इस उम्मीद से एक बार फिर ताले पर गयी कि शायद कोई पर्ची वहां लगी हो, पर कहीं कुछ नहीं था सिवाय धूल की एक मोटी परत के जो इस बात का गवाह थी कि कई दिनों से इस दरवाज़े पर किसी इंसान के हाथों का स्पर्श नहीं हुआ है. आस-पास देखा कि शायद कहीं कोई दिख जाए तो कुछ पता लगे पर दुपहरी का वक़्त होने के कारण कोई भी अपने घर के बाहर नहीं दिखा. थोड़ी देर तक इसी उधेड़बुन में खड़ा रहा कि अब क्या किया जाय. प्यास के मारे गला भी सूख गया था और लम्बी यात्रा की थकान शरीर पर धीरे-धीरे हावी हो रही थी.

अचानक ध्यान आया कि पहले जब कभी बाहर जाते थे तो मेन रोड पर स्थित अपने पारिवारिक मित्र-दम्पत्ति अनीता और अरविंद के यहां चाबी छोड़ दी जाती थी. थके-थके क़दमों से उनके दरवाज़े तक का सफ़र किसी तरह पूरा हुआ और हलके हाथों से कॉलबेल बजा दी. दरवाज़ा अनीता ने खोला. एक पल के लिए उसके चेहरे पर अपरिचय की छाया-सी उभरी और फिर पहचान कर हड़बड़ाते हुए उसे अंदर आने को कहा. लम्बे अंतराल और जेल के रहन-सहन ने इतना परिवर्तन तो ला ही दिया था कि एक नज़र में कोई सहसा पहचान न सके.

'अनीता, घर की चाबी है क्या तुम्हारे यहां?' संकोच में डूबे स्वर किसी तरह बाहर निकले.

'हां, बिल्कुल है ,पर तुम पहले अंदर तो आओ.'

जिस घर में बेहिचक समय-असमय आना-जाना रहा उसी घर में आज अंदर आते समय संकोच-सा हो आया. ...बहुत दिनों बाद देखने पर अपना घर भी अजनबी -सा लगने लगता है.

वाश-बेसिन पर हाथ-मुंह धोकर आने तक अनीता ने मेज पर गुड़ की डली और पानी रख दिया था– 'निखिल, तुमने सूचित क्यों नहीं किया कि तुम कब रिहा हो रहे हो? दिन और तारीख तो तुम्हें काफी समय पहले ही मालूम पड़ गया होगा.' अनीता की आंखों में शिकायत थी.

'दीप्ति को खत भेजा था मैंने. उसने तुम लोगों से ज़िक्र नहीं किया?' निखिल ने उसकी तरफ़ देखा.

'नहीं, उसने हम दोनों से बिल्कुल नहीं बताया. हद है यार बेवकूफ़ी की. इतनी बड़ी बात बताना कैसे भूल गयी वो...'

थोड़ी देर बाद उसे नहाने के लिए कहकर अनीता दोपहर के खाने की तैयारी करने चली गयी.

थोड़ी देर बाद निखिल ने बैग से कपड़े निकाले और नहाने चला गया. वापस आते समय सामने टंगी हुई अनीता और अरविंद की मुस्कुराती तस्वीर पर नज़र पड़ी तो उसे लगा कि दोनों एक साथ कितने खूबसूरत लगते हैं जैसे एक दूसरे के पूरक.

अकेले होते ही गुज़री ज़िंदगी के पन्ने उसकी स्मृतियों में आकर फिर से फड़फड़ाने लगे. अनीता उसके बचपन के उन दिनों की दोस्त थी जब ज़िंदगी फूलों और तितलियों के बीच बेपरवाह फिरा करती थी. बीतते वक्त के साथ वे पहले स्कूल और फिर कॉलेज पहुंच गये. दोनों के लिए एक दूसरे का संग इतना खुशनुमा और प्रेरक था कि बड़ी आसानी से अपने पढ़ाई के दिनों को सीढ़ी दर सीढ़ी सफलता से पार कर रहे थे. बी.ए. अंतिम वर्ष में परीक्षा से दो महीने पहले ही उसके दादा जी गम्भीर रूप से बीमार पड़े. अपनी अंतिम इच्छा के रूप में उन्होंने उसके विवाह की बात की. आनन-फानन में जो रिश्ते उन दिनों आये हुए थे उसी में से एक को चुनकर कर घरवालों ने उसका विवाह कर दिया.

चाहतों को ज़ाहिर होने के पल भी नसीब नहीं हुए. उनकी दुनिया बसने से पहले ही उजड़ चुकी थी. एक तरफ कॉलेज का आखिरी और सबसे महत्वपूर्ण लम्हा तो दूसरी तरफ व्यक्तिगत जीवन की अनपेक्षित उलट-फेर. अपने आत्मबल की सीमा तक संघर्ष करके दोनों ने किसी तरह परीक्षा की तैयारियां की. कॉलेज की परम्परागत विदाई पार्टी के समय जब किसी ने 'फूलों की तरह दिल में बसाये हुए रखना, यादों के चरागों को जलाये हुए रखना, लम्बा है सफ़र इसमें कहीं रात तो होगी' गाया तो उनके सभी खास दोस्तों की आंखें उन दोनों पर ही लगी हुई थीं. पर निखिल और अनीता के आंखों की नमी तब तक एक स्थायी बंजर में तब्दील हो चुकी थी.

ज़िंदगी सपनों की दुनिया से बाहर निकलकर वास्तविकता की कठोर धरती पर आ पहुंची थी. परीक्षा देकर अनीता अपनी मौसी के पास शहर चली गयी. निखिल ने परिवार की ज़रूरतों के चलते एक छोटी नौकरी करते हुए दीप्ति के साथ अपने पारिवारिक जीवन का अगला अध्याय शुरू किया. उसका मन जैसे छोटे बड़े दो हिस्सों में बंट गया था. एक छोटे हिस्से में उसके विगत की तमाम यादें सुरक्षित थीं और दूसरा हिस्सा जीवन-संघर्ष के साथ-साथ वर्तमान के नाम पूरी

तरह समर्पित. निखिल ने सदैव इस बात का ध्यान रखा कि दोनों हिस्सों में एक सुरक्षित दूरी हमेशा बनी रहे. दीप्ति ने भी अपनी ज़िम्मेदारियों को ठीक से सहेज लिया था. समय अपने मंथर गति से निरंतर चल रहा था. देखने में यूं तो सब कुछ व्यवस्थित और सामान्य था, पर कहीं न कहीं जीवन से वो उमंग अनुपस्थित थी जो एक नये परिवार के वर्तमान को मादक और भविष्य को आशावान बनाये रखती है. कोई अदृश्य-सा कुहासा था जो छंट नहीं रहा था. दीप्ति जब कभी अपने मायके जाती, उसके स्वभाव में एक अलग ही उल्लास और रौनक आ जाती. उन दिनों कभी जब निखिल ससुराल जाता तो दीप्ति को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य होता. एक अलग तरह की रौनक से चमचमाता हुआ उसका चेहरा निखिल के लिए नितांत अजनबी-सा होता. जब भी उसने इस बारे में बात करने की कोशिश की तो दीप्ति से सहयोग नहीं मिला. उसका उदासीन व्यवहार देखकर निखिल भी धीरे-धीरे असंपृक्त-सा होता गया. उसे ये एहसास हो चला था कि रिश्तों की डोरी उलझ जाय तो ज़्यादा छेड़छाड़ करना भी ठीक नहीं होता. बहुत-सी गांठें सिर्फ़ समय ही सुलझा पाता है.

कई वर्षों बाद एक नयी कम्पनी में नियुक्त होकर निखिल इस शहर में आया. यहीं पर आस्था का जन्म हुआ. उन्हीं दिनों किसी पार्टी में निखिल की मुलाकात अनीता और उसके पति अरविंद से हुई. अनीता के जीवन साथी के रूप में अरविंद के सरल स्नेहिल स्वभाव को देखकर अच्छा लगा. उनकी परस्पर मित्रता भी खूब जम गयी और सुख-दुख में परिवार के सदस्यों की तरह सब एक दूसरे का खयाल रखने लगे. परदेस में भी घर-सा माहौल बन गया. जब ये कॉलोनी नयी-नयी बसनी शुरू हुई तो दोनों ने छोटे छोटे प्लॉट लेकर घर बनवा लिये. अरविंद ने पहले लिया तो उसका कॉलोनी के मेन रोड पर और निखिल का थोड़ा दूर गली के अंदर.

अनीता ने डाइनिंग टेबल पर खाना रखना शुरू किया तो उसकी आहट पाकर निखिल अपने अतीत से बाहर आया. 'काफी कमज़ोर हो गये हो निखिल.. तुम्हें पहचानने में कुछ पल लग गये.' अनीता ने ध्यान से उसके चेहरे को देखते हुए कहा.

'इतने वर्षों में कुछ फ़र्क तो पड़ना ही था अनीता.' और फिर एक छोटी-सी बेबस मुस्कान होठों पर लाते हुए हंसी के स्वर में कहा– 'जेल को ससुराल भले कहते हैं पर वो ऐसी ससुराल है जहां की खातिरदारी बहुत भारी पड़ जाती है.'

अनीता के चेहरे पर भी एक बेबस-सी मुस्कान आकर चली गयी. कहने-सुनने को बहुत कुछ था पर कुछ पूछने और बताने का साहस दोनों में नहीं था.

जीवन में जिस वक्त साहस की ज़रूरत होती है उसी समय यदि कदमों को पीछे खींचना पड़ जाय तो कायरता का एक बोध ता-उम्र अवचेतन में बना रह जाता है.

दोनों चुपचाप खाना खाते रहे. खाने के बाद निखिल ने चलने की बात की तो अनीता उठकर अंदर गयी, चाबी लेकर वापस आयी और बोली– 'पंद्रह-बीस दिन पहले जब दीप्ति ये चाबी छोड़ने आयी तो मैं बाथरूम में थी. उसने अरविंद को थमाया और चलते समय बोली कि उसे अचानक कुछ ज़रूरी काम से गांव जाना पड़ रहा है.'

'कुछ बताया था कि कब तक वापस लौटेगी?'

'नहीं, बहुत जल्दी में थी. बोली कि बाहर ऑटो खड़ा है. और निकल गयी. निखिल, इस समय घर जाकर क्या करोगे? पूरा घर गंदा पड़ा होगा. यहीं आराम करो. शाम तक कुछ साफ-सफाई की व्यवस्था करते हैं.

'नहीं अनीता.. इतने सालों से आराम ही तो कर रहा हूं. वैसे भी घर पहुंचकर और करना भी क्या है. तुम भी घर के और काम कर लो. रात को मिलते हैं. तब तक अरविंद भी आ जायेंगे.'

घर के अंदर हर तरफ़ और हर चीज़ पर धूल की एक परत बिछी हुई थी. देखकर ही लग रहा था कि अरसे से इस घर को किसी इंसान का हाथ नसीब नहीं हुआ है. एक दो कुर्सियों और मेज को थोड़ा साफ़ किया. मेज पर एक डायरी भी पड़ी थी. उसे भी साफ़ करके फिर से वहीं रख दिया. अंदर पलंग को भी थोड़ा झाड़कर साफ़ किया और लेट गया. थकान धीरे-धीरे चेतना पर हावी हुई और शरीर गहरी नींद के हवाले.

शाम हुई तो बाहर की किसी आहट से नींद अपने आप खुल गयी. उठकर देखा तो सूर्यास्त हो चुका था. अपने लिए एक कप काली चाय बनायी और आकर कुर्सी पर आराम से टिककर बैठ गया. चाय पीते-पीते डायरी उठायी. उसे पलटा तो अंदर कुछ पन्ने तह करके रखे हुए दिखाई पड़े. खोलकर सीधा किया तो पता चला ये तो दीप्ति की चिट्ठी है, जो शायद उसी के लिए डायरी में रखी गयी है. अचानक उसके थके हुए जिस्म में हल्की-सी उत्तेजना जागी और वो सीधा होकर कुर्सी पर बैठ गया. चिट्ठी खोली और शुरूआत की कुछ पंक्तियां पढ़ते ही शरीर और आत्मा जैसे एक दूसरे से परे हो गये. जाने कितने देर की चेतना–शून्यता के बाद धीरे-धीरे उसके आसपास की दुनिया जाग्रत हुई. चाय का कप यूं ही पड़ा था मेज पर. उठाकर एक लम्बा सिप लिया और खोयी हुई चेतना के तारों को फिर से हिलाया. आंखें पुनः पत्र के आरम्भिक हिस्से पर

जा पहुंचीं.....

निखिल,

घर छोड़कर जा रही हूं.

हमारे बीच की भाषा इतनी औपचारिक कभी नहीं रही. पर क्या करूं, कुछ और लिखने या कहने का साहस अब नहीं रहा. ये अधिकार शायद उसी दिन खत्म हो गया था जब मेरे जीवन में किसी दूसरे शख्स का प्रवेश हुआ. उस व्यक्ति का नाम या उसका ज़िक्र यहां मायने नहीं रखता क्योंकि इस सारे प्रकरण में उसका कोई दोष नहीं है. यदि है तो थोड़ा तुम्हारी अनुपस्थिति का है जिसने मुझे घर से बाहर निकलकर नौकरी करने पर बाध्य किया और बाकी मेरी उन अतृप्त लालसाओं का है जिन्होंने बरसों बरस मुझे मरुभूमि के मुसाफिर की तरह तरसाया.

मुझे मालूम है कि तुम्हें अकेलेपन का ये दुख देकर सुख मेरे हिस्से में भी स्थायी नहीं रहने वाला. पर अपने इस विस्थापन की ज़िम्मेदार भी स्वयं मैं हूं. किसी चिर-वंछित को पाने के लिए कुछ न कुछ त्याग तो करना ही पड़ेगा.

मेरे घर वालों ने बगैर मेरा मन समझे असमय विवाह के इस बंधन में बांध दिया था जिसमें जकड़ कर मेरे जीवन के बहुत से अरमान भी सूख चले.

निखिल, मुझे नहीं पता कि मेरे इस पलायन को तुम किस नज़र से देखोगे पर जीवन के भौतिक और शारीरिक सुखों के प्रति हर इंसान के अनुराग का पैमाना अलग अलग होता है. कोई तुम्हारी तरह बहुत थोड़े में संतुष्ट होकर आसानी से अपने हिस्से का जीवन जी लेता है और किसी के लिए ये जीवन सिर्फ़ बीतते दिनों का पुलिंदा भर बन के रह जाता है. मेरे अंतर्जगत में भी कहीं न कहीं ये अतृप्ति बोध बरसों से छुपा रहा, जो अवसर पाते ही सिर उठाकर खड़ा हो गया. ऐसा नहीं है कि मैंने संस्कारों में मिली पाप और पुण्य की परिभाषा को याद नहीं रखा या फिर परिवार के प्रति अपनी नैतिकता को अनदेखा किया पर एक दिन ऐसा लगा कि बस... अब नकली जीवन और नहीं जीना.

सड़क पर चलते हुए दुर्घटनाएं बहुतों के साथ हो जाती हैं और इसके लिए हमारे यहां का कानून भी कोई ऐसा सख़्त नहीं है. ज़्यादा से ज़्यादा छह महीने तक की सज़ा ही होती है. अब ये तो हमारा दुर्भाग्य ही था कि जो इंसान उस दुर्घटना के दौरान मरा उसके परिवार के साथ तुम्हारी पुरानी रंजिश निकली और इसी का फ़ायदा उठाते हुए उसके परिवार वालों ने इसे आम दुर्घटना की बजाय 'सोची समझी साजिश के तहत की गयी हत्या' सिद्ध करा दी.

तुम आने वाले हो और मुझे अब यहां से निकलना होगा. जाना शायद टल भी सकता था पर इस तरह का निष्ठा रहित जीवन जीकर भी आखिर क्या हासिल

होता. शरीर कहीं और, मन कहीं और. हर समय अपनी ग़लती का एहसास...

एक बार ये भी सोचा कि तुमसे सब कुछ कहकर क्षमा मांग लूं और यदि सम्भव हो तो पहले की तरह ही साथ रहें पर... चाहे जितना कोशिश कर लें अब पहले जैसा नहीं बन सकेगा ये जीवन. अतीत की अच्छी यादें इंसान के वर्तमान को भले ही बेहतर न बना सकें किंतु अतीत के दुखद और अप्रिय प्रसंग बार-बार सामने आकर हमें सहज नहीं रहने देते.

मुझे मालूम है कि तुम्हें अकेलेपन का ये दुख देकर सुख मेरे हिस्से में भी स्थायी नहीं रहने वाला. पर अपने इस विस्थापन की ज़िम्मेदार भी स्वयं मैं हूं. किसी चिर-वंछित को पाने के लिए कुछ न कुछ त्याग तो करना ही पड़ेगा.

हमारी बेटी इस अप्रिय प्रसंग से दूर रहे, इसलिए उसे देहरादून के एक बोर्डिंग स्कूल में डाल दिया है. हालांकि बोर्डिंग को मैंने बच्चों के लिए कभी ठीक नहीं समझा पर वर्तमान स्थिति में उसके लिए इससे बेहतर विकल्प भी नहीं. उसके स्कूल का पता भी नीचे लिख रही हूं ताकि तुम जब भी उससे मिलना चाहो मिल सको.'

पत्र पूरा हो चुका था पर बेखयाली में न जाने कितनी देर तक उसकी उगलियों के बीच अटका रहा. समय का पहिया जैसे बीच रास्ते में कहीं अटक कर रह गया था. यंत्रणा का जो अध्याय बरसों पहले जेल की सज़ा के साथ आरम्भ हुआ था वो अब भी पूरा नहीं हुआ था और दुख अपना रूप बदलकर उसके आने से पहले ही उसके घर में आकर बैठ गया था.

आंखें बंद करके कुर्सी की पुश्त पर सिर टिका लिया उसने. दिन पहले ही बीत चला था. शाम के अंधेरे ने पूरे कमरे को अपने आगोश में ले लिया...

'निखिल, क्या हो रहा है भाई' कहते हुए अरविंद ने उढ़के हुए दरवाज़े को धीरे से खोला और अंदर दाखिल हुआ. पूरा घर अंधेरे में डूबा हुआ था. धीरे-से टटोलकर रौशनी की तो देखा निखिल अपनी आराम कुर्सी पर सिर टिकाये आंखें बंद किये पड़ा है. सामने चाय का खाली कप और ऐश ट्रे में सिगरेट के कई टुकड़े पड़े थे. मेज पर खत खुला पड़ा था. अरविंद ने एक कुर्सी अपने लिए खिसकाई तो उसने आंखें खोल दीं और सीधा होकर बैठ गया.

निखिल, क्या बात है? क्या हुआ?

उसने अरविंद का सवाल सुना पर उसकी चेतना तक उन शब्दों के अर्थ नहीं पहुंच सके. अरविंद की आंखों ने उसकी खोयी हुई नज़रों का पीछा किया और तब उसके संज्ञान में मेज पर पड़ा वो पत्र आया. उसने झिझकते हुए उसे उठा लिया, एक पल ठहरकर सोचा कि इसे खोले या नहीं, पर बगैर पढ़े कुछ समझना भी मुश्किल था.

पढ़ने के बाद बहुत देर तक वो भी

सन्नाटे में बैठा रहा. वो यही नहीं समझ पाया कि ये क्या हो गया. बोलने के लिए उसके पास न तो लफ़्ज़ थे न साहस. काफी समय तक दोनों निस्तब्ध अपनी अपनी जगह बैठे रहे और उनके बीच चुप्पी भी उसी तरह पसरी रही. आखिरकार हिम्मत करके अरविंद धीरे-से उठा और जाकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया. निखिल की आंखें उसकी तरफ़ मुड़ीं और उसकी आंखों में देखते ही अरविंद को डर -सा लगा. किसी जीवित व्यक्ति की इस तरह की निर्जीव आंखें शायद उसने पहले बार देखी थीं.

'चलो,' अरविंद ने उसके कंधों पर उठने के लिए हल्का-सा दवाब दिया. निखिल धीरे-से उठा. अरविंद ने लाइट ऑफ की और बाहर निकलने के बाद घर के दरवाज़े पर ताला लगाकर चाबी अपने पैंट की जेब में रख ली.

ऊपरी मंजिल पर एक छोटा-सा खूबसूरत कमरा था जहां कभी-कभी अरविंद और निखिल देर देर तक बैठा करते थे. जगजीत सिंह और पंकज उधास की ग़ज़लों की धीमी सुर लहरियों के बीच दोनों ड्रिंक्स के छोटे-छोटे दौर का आनंद लेते. शराब उनकी आदत में शुमार नहीं थी. कभी-कभी दोनों यूं ही बैठ जाते थे और खाने के पहले एकाध पैग ले लेते थे. शराब दोनों की आदत में नहीं थी. ज़्यादातर उसी नफ़ासत से कोल्ड ड्रिंक्स कांच के गिलासों में डालकर घंटों सिप करते.

उसी कमरे में इस समय तीनों आमने सामने बैठे थे. अनीता दीप्ति का पत्र पढ़ चुकी थी और उसके समझ में ये नहीं आ रहा था कि क्या कहे और कैसे समझाए निखिल को. वो उसके बचपन का ऐसा दोस्त था जिसके संवेदनशील व्यक्तित्व के रेशे-रेशे से वो वाकिफ थी. तनाव के हालात झेलना निखिल के लिए कभी भी आसान नहीं था. बहुत जल्दी टूट जाता था. अरविंद धीरे-से उठ कर निखिल के पास गया और उसके कंधों पर अपने सांत्वना के हाथ रख दिये. निखिल का सिर्फ़ शरीर उनके पास था.

धीरे-धीरे कई दिन बीत गये. अरविंद और अनीता ने निखिल को उसके घर भी नहीं जाने दिया क्योंकि वहां अकेले पड़कर वो और अधिक अवसाद ग्रस्त हो जाता. हर बीतते दिन के साथ वो अपनी अनवरत चुप्पी से क्रमशः बाहर आ रहा था.

एक दिन शाम को अनीता और निखिल चाय पीने साथ बैठे तो अनीता ने धीरे-से बातों का सिलसिला शुरू करने की कोशिश की.

'निखिल, मुझे मालूम है इस तरह किसी को समझाना बहुत आसान होता है क्योंकि जिसके ऊपर बीतती है, एहसास उसी को होता है. पर किसी तरह इस दर्द से बाहर

निकलने की कोशिश करना ही होगा तुम्हें. जब तक ये सांसें चल रही हैं, कहीं न कहीं ये दुख-सुख, जय-पराजय भी साथ लगे ही रहने हैं. इस दुनिया में जिसने भी जन्म लिया वो इनसे नहीं बच सका चाहे वो कोई सामान्य मानव हो या महामानव.'

'जीवन के शेष दिनों को किसी न किसी तरह तो बिताना ही पड़ेगा अनीता और इस तरह नहीं बीतेगा, ये भी सच है.

पिछले दिनों बीते हुए जीवन की फ़िल्म बार-बार मन के पर्दे पर रिवाइंड होती रही...कई बार सोचा, पर कहीं से कुछ ऐसा नज़र नहीं आया जहां उंगली रखकर कह सकूं कि हां इसी जगह मुझसे भूल हुई. ये सच है कि मेरा विवाह बगैर मेरी इच्छा पूछे या समझे कर दिया गया था और उम्र के उस नाजुक मोड़ पर मैं प्रतिरोध भी नहीं कर सका था. पर, अपना अगला जीवन मैंने पूरी ईमानदारी से जिया और परिवार के लिए अपनी क्षमता भर जो भी सम्भव था, किया. उस सड़क दुर्घटना और आजीवन कारावास की सज़ा के पीछे मेरी क्या ग़लती थी आखिर?

'तुम्हारा नहीं, ये सब परिस्थितियों का दोष है निखिल. नियति के क्रूर हाथों ने ठग लिया तुम्हें.

कुछ देर तक दोनों शांत बैठे रहे. चाय ख़त्म करके निखिल उठा और खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया. सामने निरभ्र आकाश था. शाम हो जाने पर भी गर्मी कम नहीं हुई थी और दूर दूर तक सन्नाटे का ही साम्राज्य कायम था. परिंदे भी कहीं छांव में ही दुबके पड़े थे. घर के पास एक नीम का पेड़ था जिसकी पत्तियां हवा के किसी अदृश्य प्रभाव से बेहद हौले हौले हिल रही थीं.

निखिल वापस आकर अपनी जगह बैठा और बोला–

अनीता, सोच रहा हूं सबसे पहले देहरादून जाकर आस्था से मिलूं. बरसों से उसका चेहरा देखने को भी तरस गया हूं. इस विस्थापित ज़िंदगी में अब वही तो शेष है. मुझे उसके लिए हर हाल में जीना होगा.

'तुम तो वहीं हो निखिल जहां तुम्हें होना चाहिए. निर्वासन तो दीप्ति को मिला और संयोग देखो कि ये उसका खुद का चुनाव है. विस्थापन क्या सिर्फ़ घर, शहर या देश से ही होता है? इनसे कहीं अधिक कठिन है अपने मन, अपने एहसास और उन रिश्तों से विस्थापित हो जाना जिनसे हमारी सांसों की डोर जुड़ी होती है.'

अनीता, दीप्ति ने जो रास्ता चुना है उसका कुछ तो दुर्दम्य आकर्षण यकीनन होगा ही उसके लिए. यदि स्थितियां उसके अनुकूल रहीं तो शायद धीरे-धीरे मानसिक स्तर पर वो इस गुज़रे जीवन से निस्पृह भी हो जाय पर मेरे सामने तो पलायन का कोई रास्ता ही नहीं. छोड़ने को तो ये बस्ती ये शहर सब छोड़ दूं. पर उससे हासिल भी क्या होगा.

'क्या तुम ये शहर छोड़ देने का सोच रहे थे?' अनीता के चेहरे पर आशंका की एक हल्की-सी परछाईं आकर ठहर-सी गयी.

'इस बारे में भी कई बार सोचा. ऐसा लग रहा था कि यदि कहीं दूर निकल जाऊं तो शायद इस दर्द से कुछ राहत मिले. जहां न कोई पहचानने वाला हो न कोई अतीत की याद दिलाने वाला. पर इस पलायन के लिए मेरा मन तैयार नहीं क्योंकि ये दंश मेरा पीछा कहीं नहीं छोड़ने वाला है. तुम्हें याद है जब हमारे घर बन रहे थे. मैं निदा फ़ाज़ली की ग़ज़ल का ये शेर गुनगुनाता था–

घर की तामीर चाहे जैसी हो,
इसमें रोने की कुछ जगह रखना

और तुम मुझे चिढ़ाया करती थी कि 'ठीक है तुम अपने घर में एक कोना रोने के लिए छोड़ देना. हम सब वहीं बारी बारी से रो लिया करेंगे.' अब इतने मन से खड़े किये घर को छोड़कर रोने के लिए और कौन-सा कोना खोजूं अनीता?' मुस्कुराने की असफ़ल कोशिश की निखिल ने.

'अनीता, फिर मुझे लगा कि अब कहीं नहीं जाना. नियति का जो भी खेल शेष रह गया होगा यहीं रहकर उसका सामना करूंगा. तुम लोगों के आसपास रहकर अकेलेपन का ये दंश कुछ तो कम होगा.'

'बस निखिल, यही सुनना चाहती थी मैं. वैसे भी तुम कहीं जाने की सोचते तो हम तुम्हें कहां जाने देते. पारम्परिक रिश्ते नातों का अधिकार भले मेरे पास न हो, पर फिर भी तुम्हारे बचपन की दोस्त और वो भी 'पहली' होने पर इतना हक़ तो मेरा बनता ही है.'

निखिल भी उसकी बात सुनकर हलके से मुस्कुरा उठा. ये पहला अवसर था जब उन दोनों में से किसी ने अपने मन की बात एक दूसरे से की थी.

'जान पहचान बहुत पुरानी तो नहीं है भाई पर थोड़ा बहुत अधिकार मेरा भी है' अपने पुराने खिलंदड़े अंदाज में कहते हुए अरविंद अंदर आया. 'मैंने यात्रा की पूरी व्यवस्था कर ली है. तुम लोग भी अपनी तैयारी कर लो. कल सुबह हम सब देहरादून के लिए निकल रहे हैं. पहले आस्था बिटिया से मिलेंगे और जी भर के बातें करेंगे और फिर देहरादून की खूबसूरती का कुछ आनंद उठायेंगे. ज़माना हो गया है ये शहर छोड़कर कहीं घूमने गये हुए.'

'अरविंद, देहरादून जाने की बात तो अभी तक मन ही में थी. तुमने कैसे जान लिया भाई?'

'जान नहीं लिया प्यारे, महसूस कर लिया. हम जिस पर अपना अधिकार समझते हैं उसके विषय में बहुत कुछ महसूस कर लिया करते हैं,' मुस्कुराते हुए जवाब दिया अरविंद ने.

नि:स्वार्थ रिश्तों की इस आत्मीयता से घर का हर कोना महक उठा. ❑

काशी के गुरुकुल में चार दिन

● बलराम

काशी में एक जगह है अस्सी और अस्सी पर कथाकार काशीनाथ सिंह ने ठेठ हिंदी में उपन्यास लिखा है– 'काशी का अस्सी'. उन्हीं काशी ने समय-समय पर कुछ संस्मरण लिखे हैं, जिनके संग्रह छपे तो अपने अनूठेपन के कारण सराहे गये, खासकर इसलिए कि उनमें लोकजीवन से उठायी गयी जिस खुरदुरी भाषा का उपयोग उन्होंने किया है, वह रचना को सीधे जन से जोड़ देती है, जिसे पढ़ते हुए लगता है कि जैसे लेखक ठेठ देसी मानुष की बोली-बानी में बात कर रहा है, जहां कोई सायास बुनावट नहीं है. बुनावट कई बार रचना को बनावटी और सजावटी रूप दे देती है, जिससे काशीनाथ सिंह ने खुद को सायास मुक्त किया और अपनी ऐसी भाषा विकसित की, जिसकी नकल सम्भव नहीं. चंद महत्वपूर्ण कवियों में शुमार धूमिल के संग-साथ ने काशी को एक समय अकहानीकारों की पांत में खड़ा कर दिया था. उनके संग्रह 'लोग बिस्तरों पर' की कहानियां उस दौर की याद दिलाती हैं, जब अराजक मानसिकता में कहानियां-कविताएं लिखी जाने लगी थीं, जिनके पाठक न्यून से न्यूनतर हो चले थे. एक लेखक के रूप में स्थापित-विस्थापित होने के कठिन दौर से तभी गुजरे थे काशीनाथ सिंह, जिसके बारे में उन्होंने कहा, 'सन् 1970 के आसपास धीरे-धीरे समझने लगा कि क्यों चल (लिख) रहा हूं और चलकर कहां जाना है, आज भी 'कहानी' मेरे लिए खास चीज़ है, ऐसी चीज़, जिसके लिए 'मूड' का इंतज़ार करना पड़ता है.'

साहित्य में त्रयी का चलन रहा है. लखनऊ की प्रसिद्ध त्रयी में जैसे अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा और यशपाल थे, वैसे ही कवियों में नागार्जुन, त्रिलोचन और शमशेर रहे तो कथाकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव. बाद में रवींद्र कालिया, काशीनाथ सिंह और ज्ञानरंजन की त्रयी मशहूर हुई, जिसमें दूधनाथ को जोड़कर चतुष्कोण बना. फिर उसमें जुड़े थे विजयमोहन सिंह, आधे कथाकार और आधे आलोचक. उस पर काशी ने संस्मरण लिखा था– 'किस्सा साढ़े चार यार', जिसकी खासी चर्चा रही.

ऐसे ही एक संस्मरण 'तीसरे भाई की

खोज में प्रानपियारे' में काशी ने ज्ञानरंजन और कमला प्रसाद में एकत्व स्थापित हो जाने का चित्रण कुछ यों किया है : 'मैंने उन दो दिनों में देख लिया था कि कमला नाम का यह आदमी लग जाए तो बालू में से तेल निकाल ले. कमला ने ज्ञानरंजन से कहा होगा कि लोगों की इच्छाओं और भावनाओं को देखते हुए अपन लोगों को एक पत्रिका निकालनी चाहिए. 'पगध्वनि' के सम्पादन का अनुभव कमला को था और इलाहाबाद से प्रकाशित होते रहे 'आधार' के सम्पादन का ज्ञानरंजन को. ज्ञानरंजन उन दिनों वह नहीं था, जो आज है. इलाहाबादी आधुनिकता और 'परिमल' के संस्कारों में पला-बढ़ा ज्ञान अलमस्त और फक्कड़ और अल्हड़ था! कमला ने ज्ञान को घेर लिया होगा, 'तुम सिर्फ 'हां' भर दो. बाकी अपन देख लेंगे.' बाद में विचार-विमर्श के बाद राय बनी होगी कि पत्रिका का नाम 'पहल' हो. इस तरह नामालूम से शहर (सतना) ने एक आंदोलन की शुरूआत की.' इस किताब के वृत्त में आये शिवप्रसाद सिंह, कुमार सम्भव, बच्चन सिंह और महेश्वर आदि के चरित्र देखते-पढ़ते हम सहसा उस समय को जीने लगते हैं.

अपनी लेखन कला को विकसित करने के दौरान हुए अपने एक विलक्षण अनुभव के बारे में काशी ने लिखा है– 'जब किताबी ज्ञान का तेल डाले दीया के साथ घूम रहा था कि कोई मिले और तीली जला दे तो गांव जाते समय बस में भेंट हो गयी बचपन के सहपाठी कैलाश से, जो किसी तरह हाई स्कूल पास कर गया था. आगे की पढ़ाई के लिए शहर आया, लेकिन पढ़ नहीं सका. उसकी गिनती शहर के गुंडों में होती थी और ऐसी कोई रंडी न थी, जो उसे जानती न रही हो. उसने ठेकेदारी में लाखों रुपये कमाये और इन्हीं सब में फूंक दिये थे. बड़े-बड़े गलमुच्छे, तना सीना, अकड़ी गर्दन और चेहरे पर आत्मविश्वास. वह अपनी ज़िंदगी की ढेर सारी घटनाएं सुनाता रहा. उसने मुझे विश्वास करा दिया कि किताबें और ज्ञान बेकार हैं, असल चीज़ है ज़िंदगी, उसके अनुभव, उलटफेर. इसी प्रकार जैसे-जैसे लोगों से मिलता गया, मुझे विश्वास होता गया कि हर आदमी के पास ऐसा कुछ है, जिससे सीखा जा सकता है. इसी दौरान मैंने यह भी जाना कि किसी भी आदमी की दिलचस्पी जानी या देखी हुई चीज़ों को जानने में नहीं होती. वह उसे जानना चाहता है, जो असाधारण हो, विशिष्ट हो, उसकी अपनी परिचित दुनिया से बाहर का हो. यथार्थ और विश्वसनीय होते हुए भी उसे लगे कि उसने वह जाना है, जिसे मानता नहीं था. उसने वह देखा, जो अब तक उसकी आंखों से ओझल था. यह हमारे समकालीन लेखकों की धारणाओं के खिलाफ़ बात थी, क्योंकि वे रोज़मर्रा

की ज़िंदगी की हर छोटी-बड़ी बात लिख रहे थे.' यही वह बिंदु है, जहां काशी ने कथाकार के रूप में अपनी अलग राह चुनते हुए लिखा– 'भला हो नामवर सिंह का, जिन्होंने उन्हीं दिनों चेखव, तुर्गनेव, हेमिंग्वे और तोल्स्तोय से परिचय कराया. मैंने एक नाम अपने से जोड़ा– प्रेमचंद, जिन्हें एक ज़माने से खारिज कर दिया गया था और उस समय भी उनके खिलाफ़ गर्म हवा चल रही थी. मैंने इन लेखकों को खोज-खोजकर पढ़ना शुरू किया और कहानी के बारे में उन लोगों से जानकारियां इकट्ठी करनी शुरू कीं, जो साहित्य प्रेमी या पाठक तो थे, लेकिन लेखक और आलोचक नहीं थे.'

अपने बारे में ऐसी तमाम बातें बताने वाले काशीनाथ सिंह मेरे लिए गुरु स्थानीय कथाकार रहे, कामतानाथ की तरह, लेकिन काशीनाथ सिंह का चेहरा मैं कभी ठीक से देख नहीं सका. खुद काशी ने अपना चेहरा ठीक से कहां देखा कभी. किसी ने शायद उन्हें कभी कोई आईना ही नहीं दिया, जिसमें वे अपना चेहरा ठीक से देख पाते.

बहरहाल, यहां याद आ रहा है ऐसे आईने का एक वाकया, जिसमें नागार्जुन को आईना पकड़ाते हुए मोहन राकेश ने कहा था कि इसमें ठीक से अपने चेहरा देखो और बताओ कि कैसे दिखते हो? तब बाबा ने 'सारिका' में अपने बारे में खुलकर लिखा था, लेकिन उज्जैन में पिचहत्तर पार करते नामवर को काली (कालिदास) ने जो आईना सौंपा था, दिल्ली लौटकर उसमें अपना चेहरा देखने की बजाय उन्होंने बनारस जाकर बड़ा भाई होने के गुरूर में उसे काशी के हाथ में धर दिया.

विवश काशी कई बरस तक आईने में अपना चेहरा देखते और पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे, जिनकी किताब छपी तो पहली प्रति के साथ दिल्ली आये और उसके साथ नामवर को उनका दिया वह आईना भी लौटाते हुए कहा, 'और अब आप...'

ऐसा देख-सुनकर सनाका खाये नामवर ने कुछ दिन बाद उस आईने में अपना चेहरा देखा और उस पर एक आत्मलेख लिखकर कथाकार अखिलेश के 'तद्भव' को दे दिया, लेकिन वह सिलसिला आगे बढ़ पाता कि गुरु लोग सक्रिय हो गये और नामवर को कालिदास से मिला वह आईना चुराकर किसी विदेशी स्कॉलर को बेच दिया. आईने की तलाश में नामवर इधर-उधर मारे-मारे फिरे, लेकिन तमाम कोशिशों के बावजूद वह उन्हें मिल नहीं सका और आत्मलेख लिखने का उनका सिलसिला जहां का तहां ठहरा का ठहरा रह गया.

ऐसे काशी का चेहरा देखने की पहली कोशिश हमने तब की, जब नामवर जेएनयू में पढ़ाते हुए वहीं रहा करते थे. जामिया मिलिया इस्लामिया में हजारीप्रसाद द्विवेदी

के उपन्यासों की अंतर्वस्तु पर दिये गये उनके व्याख्यान के हाउस जर्नल में छपे संक्षिप्त रूप को सम्पूर्ण रूप में लिख देने का हमारा अनुरोध नामवर ने स्वीकार कर लिया था. वही लेने उनके घर गया तो पता चला कि बनारस से काशी आये हैं.

ऊपरी मंजिल से काशी नीचे उतरते दिखे तो हम उनकी ओर लपके और मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया, लेकिन हाथ जोड़े हुए वे चलते चले गये. उस समय हम उनका चेहरा ठीक से नहीं देख सके, लेकिन उनकी पीठ पर हमारी नज़र टिकी रह गयी. कुछ दिन पहले बहुमत के 'हाथ' को परे धकेलकर काशी एक साहब के 'घोड़े' को अध्यक्षीय विशेषाधिकार से जिता चुके थे. काशी के गुरुकुल में पहले दिन का यह मेरा पहला पाठ था, जिसका निहितार्थ चेहरे पर नहीं, उनकी पीठ पर लिखा दिख रहा था.

कोई दस बरस गुजर गये काशीनाथ सिंह की उसी पीठ पर नजरें टिकाये कि वे पलटें तो ठीक से उनका चेहरा तो देख लूं. काशी के लोक जीवन को 'प्रेमचंद रचनावली' समर्पित करने उनके साथ लमही जाना चाहता था, पर शिवप्रसाद सिंह और सुखदेव सिंह के भी साथ होने या पेट में कुछ हो जाने से वे लमही तक मेरे साथ नहीं चले और मैं भी उनके दौलतखाने तक नहीं पहुंच सका, अन्यथा काशी पहुंचने पर काशीनाथ का चेहरा देखने का बड़ा मन था. सो, उनके गुरुकुल में दूसरा दिन बिना कुछ पाये यों निकल गया. सुना है कि काशी में लोगों को पाठ पढ़ाने का ऐसा चलन भी रहा है. बहरहाल, चलन, जो भी, जैसा भी रहा, चलता रहे, मुझे क्या, लेकिन बीस बरस बाद काठगोदाम रेलवे स्टेशन पर उस दिन मैंने काशी का चेहरा आखिर देख ही लिया.

सुमित्रानंदन पंत के कस्बे कौसानी से नैनीताल होते हुए दिल्ली की ट्रेन पकड़ने काठगोदाम रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहुंचे ही थे कि धोती-कुर्ते की धज में चली जा रही एक मानव आकृति की पीठ पर नज़र पड़ी. लगा कि शायद नामवर हैं. न जाने क्यों, तेज़ कदमों से आकृति की ओर बढ़ा, लेकिन यह क्या, आकृति के कदम भी तेज़ हो लिये. जितनी तेज़ी मैं लाता, आकृति के कदम उससे भी तेज़ हो लेते.

सूरज डूबने जा रहा था. डर लगा कि कहीं कोई भूत न हो! वैसे भी इस इलाके में भूतों के किस्से आम हैं. विभूतिनारायण राय ने इधर के भूतों पर 'प्रेम की भूतकथा' लिखी ही है आखिर, लेकिन आकृति का पीछा करते प्लेटफार्म के आखिरी छोर पर पहुंचते हुए सहसा बोल गया, 'नामवर जी, नमस्कार!'

आकृति तुरंत मेरी ओर पलटी और मुस्करायी, 'अरे बलराम, यहां कैसे?' सुनकर पानी-पानी हो गया. वे नामवर

नहीं, काशी थे और इतने बरस बाद भी देखते ही पहचान गये, लेकिन कैसे?

'सॉरी, आपकी आकृति पीछे से एकदम नामवर जी जैसी दिखती है.'

'उसी से तो जीवन भर पीछा छुड़ाता रहा.'

'छोड़ेगी कैसे, राम के साथ लक्ष्मण हमेशा हैं कि नहीं!'

'वो तो हैं बलराम!' कहते काशी हमारे साथ उधर लौटे, जिधर मेरे घर के लोग इंतज़ार कर रहे थे. घर-परिवार से होती बातें लेखन की ओर मुड़ीं और 'कलम हुए हाथ' के दसियों संस्करण और उनकी चर्चाओं पर जा अटकीं.

सन् 1980 में प्रकाशन संस्थान के अपने पहले ही सेट में हरीशचंद्र शर्मा ने काशी के कथा संग्रह 'आदमीनामा', केदार के कविता संग्रह 'ज़मीन पक रही है' और कामता के उपन्यास 'तुम्हारे नाम' के साथ मेरा कहानी संग्रह 'कलम हुए हाथ' भी छापा था. उन दिनों इन किताबों की बड़ी चर्चा हुई थी.

लेखन से उतर कर बात पत्रकारिता पर अटकी तो न जाने क्या सोचकर काशी अचानक कह गये, 'तुम्हारे लिए 'नवभारत' में अब क्या धरा है, वहां पड़े क्यों सड़ रहे हो. करना है तो कहीं और कुछ करो.' कहते काशी के पान खाये चेहरे पर चमकी वह रहस्यमयी मुस्कान मेरा पीछा तब तक करती रही, जब तक मैंने 'नवभारत टाइम्स' छोड़ ही नहीं दिया.

काशी के गुरुकुल में तीसरे दिन मेरे लिए यह तीसरा पाठ था, जिसने मेरे जीवन को नयी दिशा दे दी. दशकों तक उनकी पीठ का पीछा करते-करते उस दिन अचानक मैंने ठीक से कथाकार काशीनाथ सिंह का चेहरा आखिर देख ही लिया.

काशी के गुरुकुल में चौथा पाठ लेकिन ज़रा देर से मिला, यही कोई दस बरस बाद, लखनऊ में. उससे पहले एक अवसर और भी आया था, जब वे अपना चेहरा दिखा सकते थे, लेकिन वादा करके भी मेरी 'किताब' की बनारस में होने वाली गोष्ठी के दिन शहर से बाहर होने की बात कहकर बच गये. अन्यमनस्क हो हमने टिकट कैंसिल करा दिया और गोष्ठी टल गयी.

'किताब' में काशी के साथ डॉ. नामवर सिंह पर भी एक अध्याय है. सो, संस्मरण गुरु होने के नाते और दोनों भाइयों के किताब में होने के चलते वे इस पर क्या कहते हैं, जानने की जिज्ञासा थी, लेकिन वे फिर भाग निकले.

दूधनाथ सिंह से मेरी सिर्फ एक मुलाकात हो सकी, उनके शिमला प्रवास के दौरान. हरनोट उनसे मिलाने उनके डेरे पर ले गये थे. ज्ञानरंजन से भी एकाध मुलाकात की ही स्मृति है, लेकिन रवींद्र कालिया से दिल्ली में अनेक मुलाकातें

और उनके ठहाके याद हैं और याद हैं विजयमोहन सिंह से हुई भेंटें और बातें भी. उनका एक लम्बा इंटरव्यू किया था, जिसे ज्ञान ने कुछ और लम्बा करवाया, लेकिन चार बरस तक फाइलों में दबाये रहे तो केशव को उनकी पत्रिका 'हिमप्रस्थ' के विशेषांक के लिए दे दिया. इन चारों पर काशी ने 'किस्सा साढ़े चार यार' लिखा था. विजयमोहन सिंह को आधा माना गया था.

बहरहाल, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने जिस दिन काशीनाथ सिंह को 'भारत भारती सम्मान' प्रदान किया, उसी दिन उसी मंच पर खाकसार को 'साहित्य भूषण सम्मान' से समलंकृत कर दिया. समारोह सम्पन्न होने पर मंच से उतरते काशी की ओर लपक कर मैंने हाथ जोड़ते हुए उन्हें बधाई दी.

'अब तुम मेरी बधाई के हकदार हुए.' आगे बढ़कर बाहों में भरते हुए काशी ने कहा, 'और देखो, इन दिनों इसे पढ़ रहा हूं.'

यशपाल सभागार में ही अपने शांति निकेतनी झोले का मुंह खोलते हुए काशी ने उसमें पड़ा इकलौता पोथा दिखाया– 'माफ करना यार'.

इसके बाद देखने, सुनने और कहने को क्या बचा? ❑

जीवन के मायने की तलाश

इस विशाल ब्रह्मांड में भटकते हुए हम हजारों साल से ही जीवन का अर्थ तलाशते रहे हैं, लेकिन कोई भी ऐसा नहीं है, जो अपनी तलाश पूरी कर यह बता पाए कि उनके लिए जीवन के क्या मायने हैं. मेरी सलाह यह है कि जब व्यक्तिगत क्षमता का आकलन कर रहे हों, तब किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले ब्रह्मांड का अवलोकन करें और महसूस करें कि विशाल अंतरिक्ष से क्या संकेत मिलता है. अंतहीन ब्रह्मांड हमें आश्चर्य से भर देता है. इससे यह भी पता चलता है कि बहुत से रहस्यों का खुलासा नहीं होने के बावजूद अंतरिक्ष का अस्तित्व है. वह अपनी जगह ना सिर्फ स्थिर है, बल्कि अनगिनत गतिविधियों का संचालन भी वहां हो रहा है. ठीक ऐसी ही जीवन का अस्तित्व है. कई बार उसका अर्थ ना भी समझ में आए, बावजूद इसके जीवन का महत्व कम नहीं होता. हां निस्सार ढंग से बस जीए जाने का नाम जीवन नहीं है, इसलिए इसके अर्थ की तलाश जारी रहनी चाहिए. **– अलेक्जेंडर थिन**

कैसा होता है हिन्दू?

● धर्मपाल अकेला

एक दिन मेरे एक मित्र अपने साथ एक छह-सात वर्षीय सुंदर बालक को लेकर मेरे घर आये और आते ही परिचय दिया, उनकी बहन का लड़का है. पाकिस्तान से आया है. इसे हिंदू देखने की तमन्ना है. फिर बच्चे से मुखातिब हुए– 'हैदर मियां इन्हें देख लो, ये हिंदू हैं.'

बालक ने थोड़ी देर तक चुपचाप मुझे निहारा और फिर मेरे पास आकर मुझे छूकर देखा. थोड़ी देर तक सोचते रहने के बाद मित्र से शिकायत भरे लहजे में कहा– ''आप बहकाते हैं, ये तो मामूजान हैं आपके दोस्त...'' और फिर उनकी अंगुली पकड़कर उन्हें हिलाते हुए कहा– ''हमें हिंदू देखना है, सचमुच का हिंदू... हमें. हिंदू दिखाइए...''

तभी अखबार वाला आया. मैंने कहा– ''इन्हें देख लीजिए, ये हिंदू हैं.''

अविश्वासपूर्वक उलाहने के अंदाज़ में बालक ने मुझे देखा– ''ये तो अखबार वाला है, हॉकर... ऐसे तो हमारे पाकिस्तान में भी हैं.''

तभी सड़क पर रिक्शाओं में लदे-फदे स्कूली यूनीफार्म पहने बालक जाते दिखे. मैंने हैदर मियां से कहा– ''इन्हें देख रहें हैं न हैदर मियां, ये सभी बच्चे हिंदू हैं.''

हैदर मियां ने उन बालकों की ओर देखा और फिर पलटकर मुझसे बोले– ये तो तालिबे इल्म हैं, देखते नहीं इनके साथ इन सभी के बस्ते लटके हुए हैं रिक्शा में- हमें तो हिंदू दिखा दीजिए, कल को हम पाकिस्तान लौट जाने वाले हैं...

हम दोनों मित्रों ने हैदर मियां को प्रेसवाला, सब्जीवाला, राजमिस्त्री, डॉकिया, वैद्य और हलवाई दिखाते हुए बताया, मियां ये सब हिंदू हैं, मगर हैदर मियां भी एक ही निकले– हमारे बयान की धज्जियां-सी उड़ाते हुए बोले– ''ये धोबी, कुंजड़ा, मेसन, डॉकिया, हकीम और हलवाई हमारे यहां भी ऐसे ही हैं, हमें आप हिंदू दिखाइए. हिंदू, दिखाएंगे न?''

दूसरे दिन हैदर मियां दिल्ली चले गये, वहां से पाकिस्तान. उन्हें कोई हिंदू मिला कि नहीं, हम नहीं जान पाये, लेकिन तब से आज तक मैं स्वयं भी हिंदू की ही खोज में लगा हूं, मुझे भी हिंदू कहां मिला है.

क्या आपने कोई हिंदू देखा है, जो सिर्फ हिंदू हो और कुछ नहीं. 'सत्यं वद् धर्मचर' वाला 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' वाला, मिल जाये तो बताइयेगा ज़रूर– बताएंगे न? ❑

भारतीय कौन

● विद्यानिवास मिश्र

मेरी समझ में दो प्रकार के भारतीय होते हैं, एक तो वे जो अपने को भारत का मानते हैं और दूसरे जो भारत को अपना मानते हैं. एक कहता है मैं भारत का हूं, दूसरा कहता है भारत मेरा है. एक अपने को भारत को सौंपता है, दूसरा भारत पर अपना दावा स्थापित करता है. दुर्भाग्य यह है कि अधिसंख्य भारतीय दूसरी ही कोटि के हैं. ज़रूरी नहीं कि भारत में पैदा होनेवाले ही भारत पर अपना दावा रखें, बहुत से लोग जो भारत से बाहर पैदा हुए, भारत से भिन्न देश की नागरिकता प्राप्त कर ली, तब भी आवश्यकता पड़ने पर सताये जाने पर भारत को अपना कहने लगते हैं, क्योंकि कोई और देश उनका अपना नहीं रह जाता. उसी तरह ऐसे भी हैं, जो न भारत में पैदा हुए न भारतीय मूल के हैं और न उनकी नागरिकता पर कोई खतरा है, पर मन में उनके कहीं उठने लगता है कि मैं भी भारत का हूं, क्योंकि भारत जिन विचारों, भावों और संस्कारों की राशि है, उन विचारों, भावों और संस्कारों से मेरा मन, मेरी बुद्धि और मेरा अहंकार अभिभूत है. आनंद कुमारस्वामी भारत में पैदा नहीं हुए, अमरीका में अधिकतर रहे, बेटी हाइमन इंग्लैंड में रहीं, त्सिमर तो हिंदुस्तान आये तक नहीं, पर वे भारत के रंग में ऐसे रंगे जैसे भारत में रहनेवाले भारत के सपूत भी नहीं रंगे. राजनीतिक परिभाषा से वे भारतीय न हों पर क्या ऐसे जनों पर राजनीति मात्र के लिए भारतीयों की राशि हम वार नहीं सकते? क्या रहीम जैसा तुर्क भारतीय नहीं है?

समुद्र में छोटी मछली होती है, बड़ी मछली भी होती है और वह समुद्र पर अपना कब्जा मानती है, समुद्र को अपनी सुरक्षा मानती है, पर समुद्र से विलग होते ही निष्प्राण हो जाती है. समुद्र की बूंद होती है, वह समुद्र में रहती है तो समुद्र में समाई रहती है, समुद्र से अलग उसकी कोई हलचल नहीं होती, समुद्र से अलग उसकी कोई सत्ता नहीं होती, पर कभी उत्ताल लहरों के साथ उठती है और समुद्र का झाग छोड़कर ऊपर उड़ती है, कभी सूर्य की किरणों को रंग देने के लिए, कभी चंद्र की किरणों को उज्ज्वल तरल ज्योति देने के लिए. वह समुद्र के विरोध में नहीं खड़ी

होती, केवल जीवन के आकर्षण से बिंधकर समुद्र से बिछुड़ती है, और जीवन की तपन कभी उसे दूर बादलों में पहुंचाती है और वह वर्षा की बूंद बनकर धरती में समाती है और धरती के ऊपर हरियाली का सागर बनकर लहराती है. उस नन्हीं बूंद में उस समय पूरा समुद्र आ जाता है.

वैसे ही कुछ भारतीय ऐसे भी होते हैं और हुए हैं जो जीवन से खिंचे, उन्होंने दूसरों के उद्धार के लिए नहीं, दूसरों के दर्द की धरती में मिलने के लिए भारत के बाहर देखा, भारत के बाहर रहे, और भारत के बाहर भारत की अनंतता लहरा आये. उनसे भारत ने आकार पाया उसी प्रकार, जिस प्रकार समुद्र से उठनेवाली भाप तक बननेवाली बूंदों से समुद्र आकार पाता रहता है. आलंकारिक भाषा छोड़कर सोचें कि भारतीय होने का क्या अर्थ होता है, भारत की परिभाषा क्या है? भारत क्या कोरा भूगोल है या मोहनजोदड़ो काल से लेकर कालपात्र गाड़ने और उखाड़ने तक का इतिहास है. भारत क्या कुछ शासकों की नामावली है, कुछ जातियों के मिलने और मिलकर भी दूसरों के उकसाने पर विलग होने की बच्चों वाली कहानी है. मेरी समझ में ये सारी बातें भारत की सतही और कामचलाऊ परिभाषा बनाती हैं और इन परिभाषाओं से रूंधा हुआ आदमी बड़ा ही नकली किस्म का भारतीय होता है, झूठे अभिमान से ग्रस्त, अनजिये अतीत से ग्रस्त और अवास्तविक वर्तमान से त्रस्त भारतीय होता है. भारत सही माने में एक भावधारा है, जो हर पानी में गंगा का आवाहन करती है, ऐसी गंगा जो अभिशप्त प्रेतों को तारने के लिए ही शंकर के जटाजूट से उतरती है, जो हर पत्थर में एक आकांक्षा पढ़ती है, जो हर आदमी में एक अनंत चैतन्य की सम्भावना देखती है, हर काठ में एक चिनगारी देखती है, दूर आकाश के तारे में, आत्मीयता की सम्भावना देखती है. ऐसा नहीं कि वह भेद देखती नहीं, पहचानती नहीं पर वह खोजती है अभेद. यह भी नहीं है कि कालगणना का उसे अभ्यास नहीं या इतिहास को गुजरते वह देख नहीं पाती, पर छोटी कालगणनाओं से अनंत ऋतुचक्र की निरंतरता देखती रहती है, इतिहास के जुलूस से अधिक जिस रास्ते पर जुलूस चला जा रहा है, उस रास्ते को देखती है और कई जुलूस मिलकर उसके लिए ऐसे मनहर सत्य बन जाते हैं, जो खंडकाल दृष्टि से काल्पनिक लगते हैं पर अखंडकाल दृष्टि से ही वे सतत वर्तमान जीवन में व्याप्त व्यापार हो जाते हैं. राम और कृष्ण और बुद्ध इस इतिहास में तो एक बार उतरे, पर जीवन में इस भावधारा के कारण बार-बार उतरते रहते हैं, वे कभी व्यतीत नहीं होने पाते.

पश्चिम की शिक्षा ने हमें बहुत कुंठित किया है, हम इस भावधारा से बहुत तटस्थ

हो गये हैं. हमारे बच्चे जन्माष्टमी या रामनवमी के दिन अपने साथियों से कहते हैं कि आज हमारे लॉर्ड कृष्णा या लॉर्ड रामा का बर्थडे है. उन्हें हमने कॉन्वेंट में भेजकर हिंदुस्तान से एकदम तटस्थ बना दिया है, उसी समय सनातन गंवार घर में श्रीकृष्ण या श्रीराम का जन्म होता है, जन्म की प्रतीक्षा होती है, जन्म के बाद जन्म की बधाई होती है, जन्माष्टमी के दिन जन्मोत्सव मनाया जाता है, जन्मदिन नहीं.

हम जो सोफासेट और डिनर टेबल की खूबियों में गर्क हो गये हैं और प्लेट की डिजाइन और फ्रिज के जादू में खाने का रस भी भूल गये हैं, एक मेहमान आने पर जिससे कोई काम न बनता हो, कुढ़न की सुलगदानी बन जाते हैं.

पश्चिम की शिक्षा का ही पुण्य प्रताप है कि हम भारत को बेचने लगे हैं, मूर्तियों, चित्रों और पांडुलिपियों के घृणित व्यापार की बात मैं इस समय नहीं कर रहा हूं, मैं बात कर रहा हूं आपकी, अपनी, उन सबकी, जो प्रसन्न होते हैं कि पश्चिम में योग के केंद्र खुलने लगे हैं. पश्चिम के वैज्ञानिक गीता की बात करते हैं, पश्चिम में हरिकीर्तन के रिकॉर्ड काले बाज़ार में बिकने लगे हैं या रविशंकर, संयुक्ता पाणिग्रही की बड़ी धूम है. और स्वयं हमें योग से इतना ही मतलब है कि उससे उच्च रक्तचाप ठीक हो जाए, पेट ठीक रहे, फिगर बनी रहे, भरतनाट्यम या भारतीय शास्त्रीय संगीत के नाम की धूप कहीं अलमारियों में सजा दी जाए, जिससे बैठक और भोजन का संयुक्त कमरा फ्रिज, सोफासेट, गलीचा, मेज, पर्दा और सबसे अधिक उसमें अपने को खो देनेवाला आधुनिक भारतीय पश्चिम की निजता (प्राइवेसी) की अवधारणा से अभिभूत होकर भी भारतीयता की सनद हासिल किये रहे. हम यह भूल जाते हैं कि हम जो सोफासेट और डिनर टेबल की खूबियों में गर्क हो गये हैं और प्लेट की डिजाइन और फ्रिज के जादू में खाने का रस भी भूल गये हैं, एक भी ऐसा मेहमान आने पर जिससे कोई काम न बनता हो, कुढ़न की सुलगदानी बन जाते हैं, भारत के बाहर भारत को गर्दोगुबार का देश कहने लगते हैं, अब भारत में पश्चिम के नीरस और भोंडे भूखंड हैं, हमने भारत के ऊपर अपने को आरोपित तो कर लिया है, पर हम भारतीय नहीं. भारतीय वह है, जिसके दरवाज़े पर आप जाएं तो गरमी के दिन रहें तो कोरा पानी नहीं देगा, गुड़ की एक डली खाकर पानी पियें, इसके लिए आग्रह करेगा. कई वर्ष हुए मैं पुणे गया था, पुणे से अहमदनगर गया था, अहमदनगर के इलाके में तीन वर्ष से अकाल पड़ रहा था, बरगद के पेड़ तक एकदम नंगे हो गये थे, उनकी छाल तक उकाचकर लोगों ने पेट

पाला था. मेरे साथ किसान का ही एक लड़का शिवाजी था, वही मुझे अपने कॉलेज में व्याख्यान के लिए ले जा रहा था, उसी ने बताया कि जब तक हमारे पास क्षमता थी, हमने अपने पशुओं को अपना पेट काटकर खिलाया, पर जब नहीं खिला सके तो उन्हें छोड़ दिया, बहुत से पशु चारे के अभाव में मर गये और हम उन्हें तड़पते देखकर तड़पते रहे. उसी यात्रा में यह भी सुना कि कुछ पढ़े-लिखे ब्राह्मण एक गोमांस-भक्षक-समाज स्थापित किये हुए हैं, ऐसे लोग जो अकालग्रस्त नहीं हैं, पर अतिरिक्त स्वाद के लिए और आधुनिक बनने के लिए गोमांस-भक्षण को एक जीवन-मूल्य मानते हैं और उसी के पास एक समाज है जो मरणोन्मुख होते हुए भी मरणोन्मुख गाय-बैल का मांस खाने की कौन कहे, उसके मरणपर्यंत उसके मरने की कल्पना नहीं कर सकता. भारतीय तो दोनों हैं, पर भारतीयता की पहचान बस उस गंवार किसान को है और मैं उसी पहचान को स्पृहणीय मानता हूं. जब तक वह है, तब तक भारत की निरंतरता है.

मुझसे किसी अमरीकी सज्जन ने पूछा था कि भारत का पिता घर में बड़ा आतंक रखता है, एक प्रकार से वह बड़ा क्रूर शासक होता है, मुझे अपने पिता की याद आयी, बड़े क्रोधी और बड़े कठोर, अपने गुरु चट्टोपाध्याय जी की याद आयी, छोटी-सी गलती पर भी बड़ी डांट पिलानेवाले. पर पिता ऐसे त्यागी कि जब तक घर में कोई मेहमान न हो, तब तक उन्हें भूख नहीं लगती, कोई सम्पत्ति उन्होंने नहीं छोड़ी, कोई भार नहीं सौंपा, मरने के पहले केवल एक कामना की, अपने हाथ से मुंह में गंगाजल डालो! मैंने पूछा, आप कुछ आदेश देना चाहते हैं, बोले, तुम्हें क्या आदेश? गुरु ऐसे, संदेश खिलाकर ही विदा करते थे और अपने लड़कों से कहते कि तुम्हें कुछ पूछना हो तो विद्या दादा से पूछना. मैंने अपने अमरीकी मित्र को उत्तर दिया कि हमारे यहां पुत्र उत्पन्न होते ही समान अधिकारी हो जाता है, पिता उसके अधिकार का धरोहरी होता है, इसलिए वह कठोर होता है, पर पुत्र में विश्वास रखकर ही जीता है, क्योंकि पुत्र उसकी संतान है, उसके जीवन का विस्तार है, उसकी सम्भावना है, जिसे अपने से बड़ा देखना चाहता है, आप तो अपनी संतान को स्वतंत्र छोड़ते हैं अपने ऐहिक एकांत के पूर्ण भोग के लिए, हमारे यहां के पिता का कोई एकांत नहीं. इसलिए हमारे यहां अभी भी वृद्ध पिता-माता द्वार के गणेश नहीं हैं, आभ्यंतर के पूजाघर हैं.

यह संतानवाहिता भारतीयता का बड़ा ही सटीक पैमाना है. यह केवल अपनी संतान तक सीमित नहीं, केवल मनुष्य तक सीमित नहीं, पेड़-पौधों तक जाती है, नदियों और पर्वतों तक जाती है, नदियां माताएं बनकर स्तन्य-पान कराती हैं, पर्वत

कुलपर्वत बनकर पिता की तरह आश्वासन की छांह देते हैं. हरे पेड़ काटने में पाप-बोध अंधविश्वास जिनकी नज़र में हो, पर सच्चे भारतीय के मूल्य-बोध का वह परिचायक है, क्योंकि भारतीय होने का अर्थ है, सबकी चिंता रखना, क्योंकि सब हममें है. हमारे भीतर नदी है, पहाड़ हैं, पेड़ हैं, पशु हैं, पक्षी हैं.

हमारी शिक्षा ने हमसे हमारापन छीनकर 'मैंकार', 'तूकार' हमारे ऊपर ओढ़ा दिया है और उसे डेढ़ सौ वर्षों से धारण करते-करते शिक्षित समाज उसे ही अपनी चमड़ी मानने लगा है. उसी के कारण हमारा जीवन अनेक विडम्बनाओं का शिकार हो गया है, जातिहीन समाज की बात करते हुए भी हम घोर जाति-सुरक्षावादी हो गये हैं, क्योंकि जाति व्यक्तिगत स्वार्थ और अभ्युदय में राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक साधन हो गयी है, विश्वयारी की बात करते-करते हम भारतीयता के सबसे मूल्यवान अंश को प्रगति में रोड़ा मानने लगे हैं, शिक्षा-प्रसार की दयालुता दिखाने के लोभ में हम ऐसे अंधे हो गये हैं कि मौखिक अनुश्रुति में गहरी शिक्षा पाये हुए समाज की सहज स्पृहणीय संस्कारिता का स्तर हम नहीं देख सकते, इसीलिए उनके लिए शिक्षा-नीति नहीं बना पाते, बस एक गलत शिक्षा नीति के द्वारा सही जीवन शिक्षा का अवमूल्यन करते जा रहे हैं. पर यह सब सोचता हूं तो मन पीड़ा से भर जाता है. जिनका भारत है, जो भारत के दावेदार हैं, जो जनतंत्र के 'पथेर दावी' हैं, वे ऐसा नहीं सोचते, मैं बूंद का एक छोटा-सा कतरा स्वर्गीय नवीन के शब्दों में 'एक बिंदु इंदुमथित' सिंधु लहर छोड़कर एकाकी तप कर भी, क्या करूंगा? ❑

आत्मसंतुष्टि

एक बार इंद्र अपने दरबार में सभी देवताओं के साथ बैठे पृथ्वी की स्थिति पर चर्चा कर रहे थे. देवताओं ने उन्हें काफी कुछ जानकारी दी. इनमें से एक अहम बात यह सामने आई कि पृथ्वीवासियों को कई वस्तुएं कुरूप लगती हैं जिससे वे असंतुष्ट व दुखी रहते हैं. यह सुनकर इंद्र ने पृथ्वी पर घोषणा करवाई कि जिसे जो भी वस्तु कुरूप लगती है, वह उसे यहां लाकर उसका रूप बदलवा ले. इंद्र की यह घोषणा सुनकर पृथ्वीवासी अपनी-अपनी वस्तुओं को सुंदर बनवाकर ले गये. इंद्र को पता लगा कि एक छोटी-सी कुटिया में रहने वाले साधु ने कुछ भी परिवर्तित नहीं करवाया है. कारण पूछने पर उसने कहा- मनुष्य जीवन से सुंदर अन्य कुछ है ही नहीं और आत्मसंतुष्टि से बढ़कर कोई आनंद नहीं है. मेरे पास ये दोनों ही हैं. फिर मुझे इन्हें बदलवाने की क्या आवश्यकता है.

आत्मकथ्य

मेरे वे तीन गुरु

● ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

मेरे बचपन का शहर रामेश्वरम एक छोटा-सा टापू था. इसकी उच्चतम चोटी 'गंधमादन पर्वतम्' थी. इस चोटी पर चढ़कर आप सारे रामेश्वरम को देख सकते हैं, नारियल के हरे पत्तों को हर तरफ देख सकते हैं. इसी तरह से फैले हुए समुद्र को दूर-दूर तक देखा जा सकता है. रामनाथ स्वामी मंदिर का गोपुरम आकाश की ऊंचाइयों को छूता है. यहां रहनेवाले लोगों की कमाई का साधन नारियल की खेती, मछली व्यापार तथा पर्यटन है. यह स्थान इस पवित्र तीर्थ-स्थल के कारण प्रसिद्ध हुआ था. रामेश्वरम का पवित्र पर्यटन स्थल भारत का विख्यात धार्मिक पर्यटन स्थल है, जो हर समय दर्शनार्थियों से भरा रहता है.

इस छोटे से शहर में मुख्यत: हिंदुओं के घर थे. कहीं-कहीं हमारे जैसे मुस्लिम परिवार भी थे. इसके साथ ही कुछ ईसाई परिवार भी रहते थे. हर समुदाय यहां शांतिमय वातावरण में रहता था. हम सब सौहार्दपूर्ण व शांतिपूर्ण माहौल में जीते थे तथा एक-दूसरे की सहायता के लिए हर समय तैयार रहते थे. भेदभाव व नफरत की आग दुनिया में फैली थी, लेकिन अभी यहां तक नहीं पहुंची थी. हर रोज अखबारों में जात-पांत के झगड़ों की खबरें सुनने में आती थीं; परंतु यहां के लोग शांतिपूर्ण माहौल में आराम से ज़िंदगी गुज़ारते थे.

शांति का यह वातावरण इस शहर में कई वर्षों से इसी तरह से बना हुआ था. मेरे पिता प्यार से हमारे पूर्वजों– हमारे दादाजी के दादाजी की कहानी सुनाते थे, जिन्होंने एक बार रामनाथ स्वामी मंदिर की मुख्य मूर्ति बचायी थी. एक प्रमुख त्योहार में भगवान् की मूर्ति को गर्भगृह से एक जुलूस के साथ मंदिर के परिसर में ले जाया जाता था. एक बार इस समारोह के दौरान लगातार घटित होनेवाली घटनाओं के चलते न जाने कब वह मूर्ति एक टैंक में गिर गयी, जिसके बारे में किसी को भी पता नहीं चला. लोगों को जब यह पता चला तब वे आनेवाली विपत्ति के संकेत से भयभीत हो गये थे; किंतु उस भीड़ के बीच एक आदमी ने अपना धीरज नहीं खोया और सतर्कता के साथ उस पानी के टैंक में छलांग लगाकर उस मूर्ति को कुछ

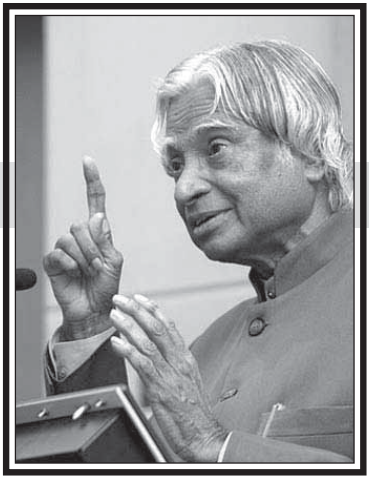

ही देर में निकाल लिया था. वे मेरे दादाजी के दादाजी थे. अब वहां उपस्थित लोगों की खुशी की कोई सीमा नहीं थी. मंदिर के पुजारी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें धन्यवाद दे रहे थे. हालांकि वे जानते थे कि वे मुस्लिम हैं, परंतु किसी के मन में वह भावना नहीं आयी. जात-पांत को माननेवाले धर्म के कट्टर अनुयायी इस घटना को नफरत की दृष्टि से देखते कि कैसे एक गैर-हिंदू ने भगवान् की मूर्ति को छुआ! लेकिन वहां मौजूद किसी भी व्यक्ति के मन में यह भावना नहीं जागी थी.

मेरे दादाजी के दादाजी को एक हीरो की तरह ख्याति मिली थी. उसके बाद वहां यह घोषणा की गयी कि हर त्योहार में मंदिर की तरफ से उन्हें सम्मानित किया जाएगा और उन्हें 'मुदल मरायादाई' का आदर दिया जायेगा. यह एक अद्वितीय सम्मान था, जो मंदिर की तरफ से दूसरे धर्म के माननेवाले को दिया जाता था. यह 'मरायादाई' कई बरसों तक चलती रही. किसी भी त्योहार से पहले हमारे दादाजी के दादाजी को सम्मानित किया जाता था. उन्हें 'मरायादाई सम्मान' वर्षों तक दिया जाता रहा. यह सम्मान सदियों तक चलता रहा. इसके बाद हमारे पूर्वजों को सम्मानित किया जाने लगा. वर्षों तक यह सिलसिला चलता रहा. हमारे पिताजी को भी 'मरायादाई सम्मान' दिया जाता था.

सौहार्द व सद्भावना का यह भाव बाद के वर्षों में भी बना रहा. मेरे पिताजी 'फेरी' के व्यापार से जुड़े हुए थे. वे तीर्थयात्रियों को धनुषकोडि तक लेकर जाते थे. हमारी 'फेरी' की सेवा मंदिर के साथ भी जुड़ी हुई थी.

मेरे पिताजी रामेश्वरम मस्जिद में इमाम थे. वे एक श्रद्धालु व्यक्ति थे और उनकी आस्था पूर्णत: 'कुरान' में थी. उन्होंने अपने बच्चों तथा अपने परिवारवालों को भी एक अच्छे मुस्लिम के रस्मो-रिवाज तथा संस्कार दिये थे. इस शहर के निवासियों के लिए वे एक मनोचिकित्सक तथा सफल गाइड भी थे. अधिकतर लोग अपनी विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए उनके पास आते थे, भले ही वह आध्यात्मिक व अन्य विषयों से जुड़ी हुई हो.

मेरे पिता के अच्छे मित्र रामनाथ स्वामी मंदिर के पुरोहित पक्षी लक्ष्मण शास्त्री थे.

वे न केवल एक पुजारी थे, बल्कि उन्हें वेदों का अच्छा ज्ञान था और एक शिक्षित व्यक्ति थे. मैं आज भी उनकी छवि को नहीं भूल सकता हूं. वे पारम्परिक पुजारी की वेशभूषा में रहते थे. उन्हें धोती तथा अंगवस्त्रम् में देखा जा सकता था. उनके सिर पर चोटी होती थी, जिसे 'कुदुमी' कहा जाता है. मेरी जानकारी के अनुसार, वे एक सज्जन व दयावान व्यक्ति थे.

इनके अलावा हमारे छोटे शहर में रहनेवाले तीसरे व्यक्ति फादर बोदल शहर की चर्च के पादरी थे. वे आध्यात्मिक रूप से महान् थे तथा उनका उस शहर में उच्च स्थान था. वे हमेशा चर्च में आनेवालों के हित के बारे में सोचते थे तथा उन सबकी भलाई के लिए कार्य करते थे. वे मेरे पिता और पक्षी लक्ष्मण शास्त्री की तरह हमेशा शहर की भलाई के लिए सोचते रहते थे तथा शहर की शांति व सद्भाव के लिए निरंतर तत्पर रहते थे.

उन तीनों की छवि मेरी यादों में अभी भी विद्यमान है. मैं आज भी उन्हें उसी रूप में देखता हूं– एक, अपनी पगड़ी व इमाम के लम्बे अंगरखे में, दूसरा धोती में तथा तीसरा अपने गाउन में नजर आता था. तीनों ही हर शुक्रवार को आपस में मिलते थे तथा धर्म पर चर्चा करते थे. इसके अलावा शहर की महत्त्वपूर्ण समस्याओं तथा घटनाओं की जानकारी लेते-देते थे. कई बार इस शहर के लोग उनके पास अपनी व शहर की समस्याओं को लेकर आते थे, जिन्हें तीनों ही सुलझाने की कोशिश करते थे. वे अपने शहर में फैलनेवाली किसी भी आशंका व अफवाह को अपनी समझदारी से दूर करते थे. इस शहर की मौलिक आवश्यकता शांति का वातावरण था, जिसे सार्थक बातचीत व समझदारी से दूर किया जाता था. उनकी चर्चा का विषय देश में स्वतंत्रता आंदोलन का रूप था. इसके अलावा ब्रिटिश सरकार का इस आंदोलन पर राजनीतिक रुख और उससे हमारे समुदाय पर पड़नेवाले प्रभाव पर व्यापक रूप से विचार किया जाता, जिससे इस शहर में शांति का माहौल बना रहता था. इस समुदाय को कुछ इस तरह से सींचा गया था कि शहर में खुशनुमा माहौल बना रहे तथा हर कोई अपनी समस्या व विचारों को इकट्ठा मिलकर बांट सके.

मेरे बचपन की एक घटना ने इस भावना को हमारे करीब रखा था. मैं उस समय आठ वर्ष का था और तीसरी कक्षा में पढ़ता था. मेरी दोस्ती रामनाथन शास्त्री, अरविंदन तथा शिवप्रकाशन से थी. वे तीनों ही ब्राह्मण थे. रामनाथन शास्त्री लक्ष्मण शास्त्री का पुत्र था. हम सब मिलकर आदर्श सहपाठियों की तरह व्यवहार करते थे. हम मिल-जुलकर कक्षा व कक्षा के बाहर समय व्यतीत करते थे. अच्छे दोस्तों की तरह हमारा दिन एक-दूसरे के बिना

अधूरा ही रहता था. अगर कोई साथी किसी कारण से विद्यालय न आये तो हम उसके लिए चिंतित रहते थे. हम सब एक साथ ही बैठते थे, एक-दूसरे के साथ अपने विचार बांटते थे. रामनाथन और मैं एक ही बैंच पर बैठते थे.

एक अध्यापक, जिसका काम विद्यार्थियों को ज्ञान देना तथा उनके दिमाग को विकसित करना है, वह कैसे इस भावना से विपरीत कार्य कर रहा था?

इससे पहले कि मैं इस कहानी को आगे बढ़ाऊं, मैं आप सबको इस स्कूल की स्थिति के बारे में बताना चाहता हूं, जहां मेरे बचपन की सुखद यादें व शरारतें जुड़ी हुई हैं. इस स्कूल का नाम रामेश्वरम पंचायत प्राइमरी स्कूल था. मैंने यहां सन् 1936 से 1944 तक शिक्षा प्राप्त की थी. यह समुद्र के किनारे स्थित था, जो बहुत मजबूत बिल्डिंग नहीं थी. इस स्कूल का कुछ हिस्सा ईंटों से निर्मित था, लेकिन छत छप्पर की बनी हुई थी. यह शहर का इकलौता स्कूल था, जहां शहर के बच्चे पढ़ते थे. हम लगभग 400 लड़के व लड़कियां इस स्कूल में पढ़ते थे. यकीनन हमारे स्कूल में कई सुविधाएं नहीं थीं, न ही इस स्कूल की बिल्डिंग बहुत अच्छी स्थिति में थी; फिर भी, यह स्कूल हम सबके लिए आकर्षण का केंद्र था, जिससे हम सब जुड़े हुए थे. इस स्कूल के अध्यापक, विशेषत: इतिहास, भूगोल व विज्ञान विषयों को पढ़ानेवाले, विद्यार्थियों के प्रिय थे. क्यों? क्योंकि वे बच्चों को प्रेमपूर्ण ढंग से पढ़ाते थे तथा आश्वस्त रहते थे, ताकि इस स्कूल के सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा मिल सके. सभी 55 बच्चों को एक जैसी शिक्षा देना तथा सबके साथ एक जैसा व्यवहार करना कोई आसान काम नहीं था. वे सिर्फ हमें अच्छे अंक लेने के लिए ही प्रेरित नहीं करते थे, बल्कि इस बात का भी ध्यान रखते थे कि सभी विद्यार्थियों में इन विषयों के प्रति रुचि व अनुराग बना रहे. हम अपने अध्यापकों में सच्चाई व ईमानदारी का भाव देखते थे.

अगर एक दिन भी कोई विद्यार्थी स्कूल न आये तो अध्यापक इसकी चिंता करते थे तथा घर जाकर उसकी अनुपस्थिति का कारण पूछते थे. अगर हममें से किसी भी विद्यार्थी के अच्छे अंक आते थे तो अध्यापक उसके घर जाकर अभिभावकों को बधाई देते थे. हमारा स्कूल हम सबके लिए रुचिकर तथा आनंददायक स्थान था. हम सभी विद्यार्थियों ने उस स्कूल में पढ़ाई आरम्भ की, किसी ने भी बीच में स्कूल नहीं छोड़ा तथा आठवीं कक्षा तक उस स्कूल में पढ़ाई की. आज जब मैं विभिन्न स्कूलों में जाता हूं, निश्चित रूप से सोचता

हूं कि स्कूल का बड़ा या छोटा होना मायने नहीं रखता. स्कूल की सुविधाओं व विज्ञापनों का अधिक असर नहीं पड़ता, इन सबका स्कूल की शिक्षा के स्तर पर कोई असर नहीं पड़ता. इसका असर देखा जा सकता है कि स्कूल में शिक्षा देनेवाले अध्यापकों के क्या गुण हैं तथा उनका शिक्षा प्रदान करने का क्या स्तर है.

अब मैं अपनी कथा पर आता हूं. उस समय छोटे स्कूलों, जैसा कि हमारा स्कूल था, में कोई यूनिफॉर्म या वरदी नहीं होती थी. विद्यार्थी इस बात के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र थे कि वे कैसी भी ड्रेस पहनकर स्कूल आ सकें. इसलिए हम अपने धर्म के अनुसार ही कपड़े पहनकर आते थे. मेरा मित्र रामनाथन अपनी चोटी के साथ स्कूल में आता था, जैसे कि उसके पिताजी कुदुमी के साथ ही बाहर निकलते थे (बाद में मेरा यह मित्र अपने पिता की तरह ही मंदिर का पुरोहित बन गया था.) मैं भी स्कूल में मुस्लिम लड़कों की तरह बुनी हुई गोल टोपी पहनकर जाता था. हममें से कोई भी अपने कपड़ों के बारे में अपने विचार नहीं बताता था और न ही कोई इसकी परवाह करता था.

जब हम तीसरी कक्षा में थे, हम सबकी ज़िंदगी में एक अनोखी घटना घटी. हमारे स्कूल में एक नये अध्यापक पढ़ाने के लिए आये. हम सब बच्चों के लिए यह एक नया हैरान करनेवाला विषय था, जिस पर चर्चा होती थी. हम बच्चे नहीं जानते थे कि आगंतुक अध्यापक का स्वभाव कैसा होगा! क्या वह सख्त स्वभाव का होगा या उसका रवैया नरम होगा? क्या वह अधिक गुस्सा करनेवाला होगा या शांत भाव का होगा? हमने उनसे पढ़ना आरम्भ नहीं किया था. जब वह पहली बार क्लास में दाखिल हुए, हमारे सपने बिखर चुके थे.

वह अध्यापक एक हिंदू ब्राह्मण था. उसने कक्षा में दाखिल होते ही हम सब की तरफ अचम्भे से देखा तथा कुछ बच्चों को हैरानी से देखा. मैं आज सोचता हूं कि उन्होंने बच्चों की आंखों की चमक तथा उनकी भोली-भाली मुस्कानों को नहीं देखा था, जो आनेवाले का स्वागत अपनी अनजान मुस्कान से करते हैं. हमारे अध्यापक ने इन सबकी परवाह न करते हुए अपना काम आरम्भ कर दिया. वह कक्षा के आगे खड़े हो गये तथा उनकी नज़र सबसे पहले मुझ पर तथा रामनाथन के बालों के गुच्छे पर जाकर थम गयी थी. उनकी नज़र में गुस्से, बेचैनी के भाव साफ़ नज़र आ रहे थे. बिना कोई कारण बताये उन्होंने मेरा नाम जानना चाहा. जब मैंने उन्हें अपना नाम बताया तो मुझे आदेश मिला कि मैं जल्दी से अपनी सभी वस्तुओं को इकट्ठा करके सबसे पीछे की पंक्ति में जाकर बैठ जाऊं, जिसका कारण वह खुद ही जानते थे.

मैं अपने को बहुत दुखी व पीड़ित महसूस कर रहा था. मुझे इस हुक्म का कारण मालूम नहीं था. रामनाथन भी आंसुओं में डूबा हुआ था. जब मैं अपनी पुस्तकें उठाकर पीछे की सीट पर बैठने गया, मेरी यादों में अभी भी वे आंसू आ रहे थे, जो कि रामनाथन की आंखों से निरंतर बह रहे थे.

हममें से कोई भी इस घटना पर शांत नहीं रह सकता था. उस दिन मैंने अपने पिताजी को सारी घटना की जानकारी दी. इसी तरह से रामनाथन ने भी अपने पिताजी को सबकुछ बता दिया. वे दोनों ही यह जानकर हैरान-परेशान हो गये. यह सब उनकी उम्मीद तथा प्रयासों के विपरीत था, जिसके लिए वे काम कर रहे थे. एक अध्यापक, जिसका काम विद्यार्थियों को ज्ञान देना तथा उनके दिमाग को विकसित करना है, वह कैसे इस भावना से विपरीत कार्य कर रहा था? हमने कभी उन सुलझे हुए इनसानों को इस तरह परेशान तथा गुस्से में नहीं देखा था. इन दोनों ने आपस में विचार-विमर्श किया तथा इस घटना की पूरी जानकारी ली.

अगले शुक्रवार शाम के समय वे हर सप्ताह की मुलाकातों की तरह एकत्र हुए. बोदल भी उस बैठक में शामिल हुए. उस अध्यापक को भी वहां उपस्थित होने के लिए कहा गया. दिन ढलने के बाद रात का पहर आ गया और हर तरफ अंधेरा छा चुका था. मेरे पिताजी तथा शास्त्रीजी ने देश में बढ़ते जात-पांत के भाव का ज़िक्र किया, जिससे देश के कई भाग प्रभावित हो चुके थे. लेकिन इस आग को वे अपने शहर में नहीं देखना चाहते थे. वे नहीं चाहते थे कि बच्चों में जात-पांत के नाम पर विभाजन किया जाए. वे इस छोटे से शहर में इस नफरत की आग को बर्दाश्त नहीं करेंगे. धर्म के नाम पर समाज को तोड़ा न जाए, अपितु धर्म से सद्भावपूर्वक समाज को जोड़ा जाए. वे नहीं चाहते थे कि बच्चों के दिमाग में नफरत के बीज बोये जाएं.

यह संदेश उस अध्यापक को ससम्मान तथा सद्भाव से दिया गया. उनसे पूछा गया कि क्या वह अपने को ज्ञान व शिक्षा का स्रोत मानेंगे, जिससे इस देश की बुनियाद मज़बूत बन सकेगी? हमारे अध्यापक महोदय चुपचाप शांत भाव से वह सबकुछ सुनते रहे तथा सोचते रहे. इसके बाद उन्होंने कहा, 'मैं नहीं जानता था कि मेरे द्वारा दो बच्चों को अलग करने का इतना व्यापक परिणाम हो सकता है! मैं अपने इर्द-गिर्द कुछ ऐसा ही देख रहा था तथा उसके अनुसार यह समाज इसी बुनियाद पर चल रहा है तथा मैंने भी उन्हीं नियमों को स्वीकार किया है. इससे पहले मुझे किसी और ने नहीं सिखाया था कि यह विभाजन समाज के लिए कितना हानिकारक हो सकता है!' उन्होंने अपनी

गलती को सुधारने का वचन दिया और सुबह अपनी गलती को सुधार लिया.

यह मेरा पहला अनुभव था कि किस तरह से धार्मिक लोग मिलकर तथा दृढ़ता से किसी समस्या को सुलझा सकते हैं. उन्होंने मिलकर समस्या को बिल्कुल समाप्त कर दिया. उन्होंने इस समस्या को धीरे-धीरे पनपने नहीं दिया और घाव को बढ़ने नहीं दिया. इस भाव ने मुझे बाद में समस्याओं को अच्छे प्रबंधन से सुलझाने का संदेश दिया.

यह एक सोच थी, जिसकी झलक मेरे जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लायी. हमारे अंदर का दृढ़ विश्वास तथा हमारे अंदर के विचार हैं, जो हमारे कार्यों को प्रभावित करते हैं. बाहर की ताकतें, दूसरों की सलाह तथा प्रलोभन आदि इसके बाद अपना प्रभाव रखते हैं; लेकिन हममें से जो सच्चाई व दृढ़ता के साथ अडिग रहते हैं, उन्हें निश्चित रूप से शांति का वातावरण मिलता है. हमारे देश में ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है, जो अपने व्यक्तित्व पर विश्वास करें और भटकानेवाले विवादों से दूर ही रहें.

अगर मेरे धर्म की बात की जाए तो निश्चित रूप से मेरे भाग्य ने मुझे विज्ञान व तकनीक के क्षेत्र में पहुंचाया था, उसकी बुनियाद रामेश्वरम से ही बनी थी. मैं हमेशा से ही विज्ञान में विश्वास करनेवाला था, लेकिन इसके साथ ही मेरा आध्यात्मिक विश्वास था, जो कि युवा अवस्था में स्थापित हो चुका था. यह मेरे साथ ही चल रहा था. मेरे मन में ईश्वर के बारे में विभिन्न मत थे. मैंने विभिन्न धर्मों की धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया था. मुझे ज्ञान की प्राप्ति 'कुरान', 'गीता' तथा 'बाइबिल' द्वारा ही मिली थी. इनके मिलाप से ही मेरे जीवन व संस्कारों का मिलाप मुझे अपनी जन्मभूमि से मिला था और इस शहर के अनूठे संस्कारों ने मेरा पूर्ण विकास किया. अगर मुझसे कोई एक सच्चे मुस्लिम के गुणों के बारे में पूछे तो मैं निश्चित रूप से अपने पिता, शास्त्रीजी तथा फादर बोदल का ज़िक्र करूंगा, जिनके साथ मैं बड़ा हुआ था, या ऐसे ही कुछ और व्यक्तित्व, जो मेरी ज़िंदगी में आये थे और जिन्होंने हमारे देश के नैतिक मूल्यों व धर्म की नींव को मज़बूत किया था. उन्होंने एक ऐसे देश का विकास किया, जहां विभिन्न धर्मों तथा विभिन्न मतों का विकास हुआ तथा हर किसी को अपना उचित स्थान मिल सका. निश्चित रूप से हम विभिन्न समस्याओं तथा मतों को देखते हैं, परंतु आनेवाली पीढ़ी अगर मेरे पूर्वजों, इमाम तथा रामेश्वरम के पुरोहित की कथाओं को याद करे, जो कि सदियों पुरानी थीं, तो उन्हें जीने का नया ढंग मिलेगा तथा हम एक धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र बनाये रखेंगे.

('मेरी जीवन-यात्रा' पुस्तक से साभार)

दो ग़ज़ल

● सूर्यभानु गुप्त

(१)

यूं हदों से गुज़र गये रिश्ते,
रह गये लोग मर गये रिश्ते.

रेत बाकी बची है रोने को,
जैसे दरिया, उतर गये रिश्ते.

रूबरू आइनों के होते ही,
अपनी शक्लों से डर गये रिश्ते.

लोग हाथों से यूं गये अपने,
बीच रस्ते बिखर गये रिश्ते.

लेके कुछ दोस्तों की तस्वीरें,
आंसुओं के नगर गये रिश्ते.

हर सफ़र में मिले फ़कत धोखे,
रहगुज़र-रहगुज़र गये रिश्ते.

धूप जब तक रही, रहा मेला,
फिर न जाने किधर गये रिश्ते.

सुबह के भूले, शाम घर लौटे,
हमको हैरान कर गये रिश्ते.

जोगियों ने तो राह ली अपनी,
और अपनी डगर गये रिश्ते.

(२)

दिल में ऐसे उतर गया कोई,
जैसे अपने ही घर गया कोई.

एक रिमझिम में बस घड़ी भर की,
उम्र भर तर-ब-तर गया कोई.

आम रस्ता नहीं था मैं फिर भी,
मुझसे होकर गुज़र गया कोई.

ज़ख्म मुझको दे ज़िंदगी भर का,
दर्द से बेखबर गया कोई.

दिन किसी तौर कट गया लेकिन,
शाम होते ही मर गया कोई.

रूप बदले थे चांद ने इतने,
चांद को देख डर गया कोई.

मैं अमावस की रात था मुझमें,
दीप ही दीप धर गया कोई.

मूरतें कुछ तराश ही लाया,
पत्थरों तक अगर गया कोई.

इश्क भी क्या अजीब दरिया है,
मैं जो डूबा उभर गया कोई.

मैं तो बेरंग था मुझे छूकर,
रंग ही रंग भर गया कोई.

धारावाहिक उपन्यास
(पंद्रहवीं किस्त)

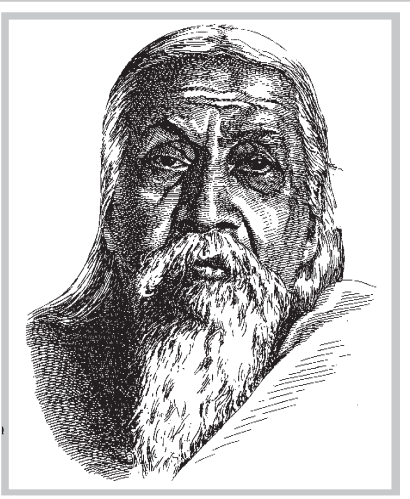

योगी अरविंद

● राजेंद्र मोहन भटनागर

दिन छोटे होने लगे थे. हवा में ठंडक बढ़ चली थी. साधकों का एक समुदाय लाइब्रेरी हाउस में चला गया. मीरा ने बढ़ते हुए साधकों को ध्यान में रखते हुए उनके आवास, भोजन और साधना की व्यवस्था कर डाली. यह जादू उनके ही वश का था. प्रबंध कला में उनका चातुर्य-कौशल देखते ही बनता था.

अब वह व्यवस्था आंतरिक संयोजन से चल पड़ी थी– एक प्रकार से आश्रम का रूप ले रही थी. आश्रम के सम्बंध में अरविंद ने कुछ नहीं सोचा था. क्या सोचते वे? वे तो अपने में ही पूर्णतया इतने व्यवस्थित हो चले थे कि उनके पास और कुछ सोचने करने के लिए समय ही नहीं रहा था.

आत्मा का तीर्थ बनाना हर एक के वश की बात नहीं है. अरविंद खिड़की से बाहर शांत पड़े निर्मल आकाश की ओर देखते हुए इतना ही कह पाये, 'मुझे जिसकी प्रतीक्षा थी, मीरा, वह तुम हो.'

'मुझे तो आपकी प्रतीक्षा थी.'

'वह प्रतीक्षा क्या पूरी हो पायेगी?'

'होगी. अवश्य होगी.'

'क्योंकि, तुमने आश्रम को बाहरी एवं आंतरिक रूप से बेहतर ढंग से सम्भालना प्रारम्भ कर दिया है. मुझे इस सबसे मुक्ति चाहिए थी, वह मिल रही हैं.'

'यदि आपने आश्रम से मुक्ति ले ली तो फिर आश्रम में क्या बचेगा?'

'एक व्यक्ति पर आश्रित रहना ठीक

नहीं है.'

'तो आप एकमात्र उस सर्वेश्वर पर क्यों केंद्रित हैं?'

'वह जितना एक है, उतना ही अनेक भी है.'

'यही बात आप पर लागू होती है.'

'मैं ईश्वर नहीं हूं.'

'ईश्वर में तो हैं या वह भी नहीं.'

'मुझे अब क्या कहना चाहिए?'

'कुछ भी नहीं.'

'मुझे तुम्हारा आभार मानना चाहिए.'

'फिर मुझे किसका आभार मानना होगा.'

'उसका.' अरविंद ने आकाश की ओर हाथ उठाते हुए कहा.

'वह भी आपके माध्यम से ही सम्भव है.'

'नहीं, तुम्हें माध्यम की ज़रूरत नहीं है, मीरा. तुम शायद जब बारह-तेरह वर्ष की होगी तब ही तुम्हें आध्यात्मिक अनुभूतियां होने लगी थीं और तुम्हें यह लगने लगा था कि उसे चेतना तथा क्रिया से समग्र रूप में पाया जा सकता है. मैं जानता था और तुम भी अनुभव करने लगी थी कि हम मिलेंगे तभी भागवत अनुष्ठान पूर्णता की ओर बढ़ सकेगा.'

'मेरी कल्पना में कृष्ण का जन्म हो चुका था और उसको पाने के लिए ही मैं यहां तक चली आई. पहली झलक में देखते ही पहचान गयी कि वो कृष्ण और कोई नहीं, आप ही हैं, अरविंद.'

'कितना विश्वास है तुम्हें मुझ पर मीरा?'

'क्यों न हो, आप विश्वास से भरे जो हैं, अरविंद. अटूट विश्वास अविश्वास नहीं जानता.'

'तभी तो तुमने बहुत पहले यह घोषणा कर दी थी जो मैं भी नहीं कर सका था कि भारत स्वतंत्र शीघ्र होगा. तब सन् 1920 था. कौन विश्वास कर सका सिवा मेरे कि तुमने कितना सच कहा था. सच शाश्वत होता है, समय से प्रतिबद्ध नहीं.'

'मैं आपमें सत्य की धड़कन सुनती हूं. सत्य कितना साकार हो सकता है, वह मैं हर पल आपको देखकर अनुभव करती रहती हूं, अरविंद. आपको अधिमानस पर सुनते हुए मुझे बराबर यही लगता रहता है कि मैं अधिमानस के स्वर प्रवाह या स्पंद के साथ बह रही हूं. मैं उसे सुन ही नहीं देख और अनुभव भी कर रही हूं– इसे ही आपने ध्वनि दृष्टि, ध्वनि चित्र, ध्वनि रंग और ध्वनि विचार कहा है, इसी से श्रवण दर्शन तथा चिंतन परस्पर आबद्ध रहते हैं. बहुत कुछ मेरे लिए यही.' ...मुझे कहना चाहिए कि अधिमानस में स्पंद, तरंगें और स्वर प्रवाह धीरे-धीरे उतरकर इस तरह से छाते जाते हैं और विस्तृत होते जाते हैं कि वे स्वत: प्रकाशवान् हो उठते हैं.' मीरा अंतर्प्रवाह में ऐसी डुबकी लगाती चली गयी कि फिर उसे बाहर आने का ध्यान

ही नहीं रहा. वह आगे कहती, 'अरविंद वही गुंजार तो मुझसे यह सब करवा रहा है और वह भी इस विश्वास के साथ कि, जैसे मेरा उससे पूर्व से घनिष्ठ परिचय रहा हो जबकि मैं उसे बिल्कुल नहीं जानती थी. अपरिचय का ऐसा मौन व निगूढ़ परिचय पाकर मैं परमोल्लास की एकांत समाधि में अपने को पाती हूं. ऐसी समाधि का उल्लेख करते हुए आपने जर्मन के सुविख्यात संगीतकार बीथोवन के बारे में बताया था कि उसे क्या सुनाई देता था? वह उस दिव्य संगीत को सुनकर क्यों अपने में अतीव आनंद से झूमने लगता था? वह ईश्वरीय संगीत सुन रहा होता था और प्रत्यक्ष में वह उसे ही सुना रहा होता था. वह भगवान् की मधुरतम आवाज़ को सुन रहा होता था. तब कुछ क्षण के लिए मुझे भी लगा कि वही है और सामने आ खड़ा हुआ है. आपको सुनते हुए भी, अरविंद, मुझे ऐसा लगता है कि आपमें कोई और बोल रहा है और आप तटस्थ यंत्र की तरह नज़र आते हैं. क्या आप भी उस समय ईश्वर की आवाज़ को सुनकर, उसे ही अपने से व्यक्त कर रहे होते हैं अथवा वही आपके स्वर में बोल रहा होता है?

'काश, मैं उस परम लीलामय ईश्वर को सामने पाकर अपनी सत्ता को कायम रख पाता, मीरा यह सब भौतिक अनुभवों से परे की बातें हैं, जिनके लिए साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किये जा सकते. वहां साक्ष्य का कोई काम नहीं है. साक्ष्य तो भौतिक दुनिया के लिए ज़रूरी हो सकता, चाहे वह झूठा ही क्यों न हो. हम उस समय जिस दुनिया में जा पहुंचते हैं वहां न तर्क होता है, न बहस के लिए अवकाश और न जज. वह सब अनुभवातीत है– गूंगे के गुड़ की तरह.' अरविंद सहज भाव से कह रहे थे और कहते हुए उनका ध्यान कहीं और था. कम-से-कम वर्तमान में वे उस समय नज़र नहीं आ रहे थे.

'परंतु अभी यहां जो घटित हुआ, अरविंद, वह क्या था? मैंने तो गुह्य विद्या के प्रयोग से वैसा ही किया जैसा उसने किया था.'

अरविंद की दृष्टि इस समय भीत से चिपकी छिपकली पर थी. मीरा उनकी ओर बड़े ध्यान से देख रही थी. उनका मुखमंडल शिशुवत था. वे शांत थे. खुली आंखों से ध्यान-मग्न थे. कुछ देर बाद वे कहने लगे, 'मीरा, मेरा छोटा भाई बारीन मेरे पास बड़ौदा आया था. वह वहां रहकर 'प्लेनचेट' और टेबिल टाइपिंग में खोया रहता था और गुह्य विद्या सम्बंधी पुस्तकें पढ़ता था. प्रायः शाम को गुह्य विद्या में रुचि रखने वालों की बैठक जुड़ा करती थी. नयी-नयी बातें सामने आती थीं. मैं भी उनकी बैठकों में कभी-कभी जाने लगा. वहां मुझे अनेक अविश्वसनीय बातों का पता चला और मैं आश्चर्यचकित

होकर रह गया.'

'उस दिन हमारे पिताजी को आत्मा का आह्वान हुआ. मेरे रोंगटे खड़े हो गये. आत्मा आयी भी और बोली भी. वह कहने लगी, 'बारीन तू तब बच्चा था, जब मैंने तुझे एक सोने की घड़ी दी थी.' सचमुच, मीरा, यह सत्य था. मैंने हैरानी से पल भर के लिए उनकी ओर देखा.'

एक दूसरे मौके पर मैं उनके बीच तब पहुंचा जब वे रामकृष्ण परमहंस की आत्मा का आह्वान कर चुके थे. उनकी आत्मा आयी और बुलंद आवाज़ में बोली, 'मंदिर गढ़ो.' सबने सुना. सबने सोचा. सबने एक-दूसरे की ओर देखा. 'आपमें से जिस किसी ने बंकिम का 'आनंद मठ' उपन्यास नहीं पढ़ा हो तो पहले वह उसे पढ़े. 'आनंद मठ' में भवानी मंदिर का वर्णन है. वैसा ही हमें भी मंदिर बनाना होगा, पूजनीय रामकृष्ण का यही संदेश है. ज़रा गहराई में जाएं तो इसका यह अर्थ होगा कि मनुष्य के भीतर भगवान् की प्रतिष्ठा का हर एक को अनुभव हो.'

अरविंद सोचने लगे. उन्हें कुछ और कहना था. स्मरण हुआ बारीन से सम्बंधित वह दूसरी घटना.

बारीन लगन का पक्का था. प्लेनचेट की बैठक में रामकृष्ण के आदेश का पालन करने के लिए वह विंध्य क्षेत्र के घने जंगलों में मंदिर के लिए स्थान ढूंढ़ता रहा पर कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिला. तब मैं बड़ौदा में था. एक रात वह वहां आ पहुंचा. उसका सारा शरीर कांप रहा था. पता चला कि उसे पहाड़ी बुखार ने धर दबोचा है. इलाज शुरू हुआ पर फर्क पड़ता नज़र नहीं आया. एक माह हो चला था. यों बेचैनी बढ़ चली थी.

दोपहर का समय था. छुट्टी का दिन था. मैं कुर्सी पर बैठा किताब पढ़ रहा था. तब एक नागा संन्यासी आया. आते ही बोला, 'बच्चे, बाबा कुछ लेने नहीं देने आया है. तेरे घर में बिस्तरे किसने पकड़ रखा है?'

'मैं चौंका. मैंने कहा, 'मेरे छोटे भाई ने– उसे तेज़ ज्वर है.''

'वह पहाड़ी खाक छानकर लौटा है.'

'हां, बाबा.'

'नागा संन्यासी ने अपने बढ़े हुए बालों पर हाथ फेरा. गहरी सांस लेकर वह बोला, 'एक गिलास पानी चाहिए'.'

पगले बाबा तब कोई बनता है जब वह अपने घर-संसार में स्वयं आग लगा देता है. संसार उसके मतलब का नहीं रहता. वह देने के लिए तप करता है, समाधि लगाता है.

'पानी आ गया.'

'क्या एक कटोरा भी मिलेगा?'

'कटोरा आ गया.'

'एक चाकू लाओ– साग-सब्जी काटने वाला.'

वह भी आ गया.

नागा संन्यासी की नशीली निगाहें एकदम लाल थीं. वह लम्बा-चौड़ा था. ताकतवर. उसने गिलास का पानी कटोरे में उलट लिया. कटोरे में पानी को स्थिर हो जाने पर मन-ही-मन कुछ पढ़ा. उसके होंठ बराबर खुले और बंद हुए. शायद उसने कोई मंत्र पढ़ा था. फिर चाकू से उस कटोरे के पानी को क्रॉस बनाते हुए काटा. फिर कहा, 'इस कटोरे का पानी उस ज्वर पीड़ित युवक को पिला दे. कल सुबह तक ज्वर सिर पर पांव रखकर भाग खड़ा होगा.'

वैसा ही किया. मैंने पूछा, 'कुछ बाबा.'

'क्या कुछ?'

'जो थोड़ा-बहुत, हमारी सामर्थ्य के अनुसार हो सके वह बाबा.'

'पगले बाबा तब कोई बनता है जब वह अपने घर-संसार में स्वयं आग लगा देता है. संसार उसके मतलब का नहीं रहता. वह देने के लिए तप करता है, समाधि लगाता है. ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह उसे इतनी सामर्थ्य अवश्य दे ताकि वह गरीब-गुरबों की मदद कर सके और उसके होने का उन्हें यकीन दिला सके. ...तुझे यह जानना बहुत ज़रूरी है.'

'क्या बाबा?'

'यही कि तुझे उसने इस धरा पर क्यों उतारा है?'

'क्यों बाबा?'

'सब्र से काम ले. समय आने पर खुद-ब-खुद वह तुझे बना देगा.'

'मैं कुछ समझा नहीं, बाबा.'

'अभी समय कहां आया है? उसे आने दे. फिर नागा बाबा को सलाम बोलना.'

वह इतना कहकर तेज़ हवा के झोंके की तरह पल-भर में इधर से आया उधर निकल गया. मैं उस ओर देखता रह गया, जिधर से वह गया था.

दूसरे दिन की सुबह तक क्या बारीन का ज्वर उतर जाएगा? कैसे उतर जाएगा? यह भी कोई जादू है. दवा न दारू, पानी काटा और पिलवा गया. लेकिन मैंने संयम से काम लिया. सुबह की प्रतीक्षा की और उसकी बात का ध्यान रखा कि उसे अब कोई दवा मत देना. कोई दवा नहीं दी. साहस से काम लिया. हालांकि यह साहस भारी पड़ सकता था. बारीन से मैंने पूछा था. उसने स्वीकृति देते हुए कहा, 'दा, आप चिंता नहीं करें. एक दिन दवा नहीं लेने से कुछ नहीं होगा. मैंने ऐसे मरीज़ों को देखा है जो तेज़ बुखार में, चिथड़े लपेटे मजूरी करते हैं. दवा के नाम पर वे तालाब का पानी चुल्लू-चुल्लू भरकर पी जाते हैं.'

आखिर वह सुबह भी आई, जिसका मुझे इंतज़ार था. मैंने सुबह को दिन चढ़ जाने दिया. कोई जल्दीबाजी नहीं की.

करीब दस बजे मैं तैयार होकर बारीन के पास आया. वह खटिया पर बैठा हुआ

था. वह मुझे देखकर कहने लगा, 'दा, जादू हो गया. ज्वर गायब. ये देखो. उसने अपना हाथ मेरी तरफ बढ़ा दिया और मैं उसकी नब्ज़ देखकर हैरान था.'

वह कह रहा था, 'इसे कहते हैं बंगाल का जादू. हींग लगे न फिटकरी और रंग चोखा आये. मुझे उस नागा की आवाज़ सुनकर विश्वास हो गया था कि वह दैवी शक्ति का प्रतीक है. ...दा, यह जानकर तुम्हें आश्चर्य हो सकता है कि हम लोगों ने उन आत्माओं को भी बुलाया था जो अपनी मृत्यु से पूर्व अपने उत्तराधिकारी को गुप्त धन के बारे में नहीं बता सकी थीं. वे आयीं और उन्होंने गुप्त धन के बारे में बताया. जहां बताया और जितना बताया, उतना ही धन उन्हें वहां मिला– न ज़रा-सा ज़्यादा और न ज़रा-सा कम. ...ऐसे ही शक्ति पुरुष भवानी मंदिर बना सकते हैं. हम जैसे तो उसके लिए उपयुक्त स्थान नहीं तलाश कर सके. हम चार मानुष, मां के भक्त, धूलि फांककर लौट आये गर्दन झुकाये, जबकि ऐसे बाबा न कहीं जाते हैं और न किसी को भेजते हैं और अपने स्थान से सातेक कोस जाना, पहाड़ी पर, एक ऊंचे स्थान पर समतल जगह मिलेगी. उस समतल ज़मीन के बीचोंबीच एक दस फीट की लम्बी पर कम चौड़ी शिला होगी. उसे ही छेनी-हथौड़े कि शिल्पकारी से भवानी बना देना. चारों ओर वहां उंची-ऊंची पहाड़ियों पर कतार से दरख्त होंगे और वहां झरने, बहता निर्मल पानी भी पास ही मिलेगा. दरअसल, दा, मैं जंगल की खाक इसलिए ही छानने गया था कि वहां कोई योगी बाबा धुनी रमाये मिल जाए और मुझे देखते ही कह उठे, 'वो देख, सामने से दाहिनी और अपनी मनोकामना पूर्ण कर– भवानी मंदिर बना. हम सब बुद्धिजीवियों से मंदिर तो बना नहीं, उस पर एक छोटी-सी किताब तैयार कर दी.'

अरविंद चुप हो गये थे. मीरा को लग रहा था कि उनके होंठ हिलते थे, उनका मुंह खुलता था और उनकी आंखें स्थिर रहती थीं परंतु उनमें बोल कोई और रहा था. मीरा ने पूछा, 'फिर? बारीन का ज्वर टूटा तो टूट गया. फिर ज्वर नहीं आया. मुझे बारीन के एक प्रौढ़ मित्र ने बतलाया था कि वह नागा बाबा एक योगी था. योगी के लिए कुछ भी कर पाना सहज सम्भव है क्योंकि वह भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों को जान सकता है.'

उसने खखारकर आगे कहा, 'और वह जो चाहे कर सकता है.'

'क्या वह अपना देश स्वतंत्र करा सकता है?'

'चुटकी बजाते ही, प्रोफेसर, चुटकी बजाते ही. आपने देखा नहीं, स्वामी विवेकानंद ने शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन में क्या कर दिखाया! सबके सिर पर उनका जादू चढ़ गया. ...इससे पहले उन्हें अपने

देश में कितने लोग जानते थे. पल-भर में सारा विश्व उनके प्रति नत हो गया. यह है योग-साधना का सुफल.'

'तो सब योगी मिलकर अपने देश को स्वतंत्र क्यों नहीं कराते?'

'ईश्वर भी तो हमारे मध्य है. यह सब उसके विधान को उलटने की चेष्टा का परिणाम है, प्रोफेसर.'

'वही तो स्रष्टा है, फिर वह विनाश लीला क्यों चाहता है?'

'नहीं...नहीं. ऐसा सोचना निर्मूल है. वह कुछ नहीं चाहता. उसने सृष्टि रची है. सृष्टि रचने का धर्म बताया है. इसके बाद उसने उन्हें प्रेरणा दी है, प्रेरणा के साथ स्वतंत्रता भी अपनी जैसी प्रदान कर कहा है, 'ये मेरी सृष्टि है, मानव. ये मैंने तुझे उपहार में दी है. साथ में तुझे मैंने बुद्धि, हृदय और मन भी अपनी तरह से स्वतंत्र दिया है. देखना चाहता हूं कि तू मेरी इस सृष्टि को और कैसे इंद्रधनुषी बना सकता है, कैसे आनंदमय बना सकता है और कैसे देवलोक को जिसको देवताओं के चाहने से स्थाई रूप से सर्वोत्तम बना दिया था, जिसके लिए उन्हें आज भी पश्चात्ताप हो रहा है, क्योंकि स्वर्ग जैसा बना दिया, वैसा ही रहेगा, उसमें सारे देवता मिलकर भी कोई परिवर्तन नहीं कर सकते. तभी तो देवता सदा पृथ्वी की ओर ललचाई दृष्टि से देखते रहते हैं. सृजन का यही शाश्वत सिद्धांत है कि सृजन हो, पोषण हो और वह काल के गाल में समाकर नव सृजन की संकल्पना से फिर उठने लगे. फिर से सृष्टि को नव रूप में ढालने लगे. ...प्रोफेसर, स्वतंत्र विवेक, स्वतंत्र कल्पना और स्वतंत्र कामना का स्रोत ही तो मानव की ऊर्जा का रहस्य है और इसीलिए वह ईश्वर के कद को छूना चाहता है, उसे मानने से इनकार हो जाना चाहता है. उसके हाथ में परिवर्तन की कुंजी है और वही कुंजी ईश्वर के पास है. ...ईश्वर भी उसकी सृष्टि का तटस्थ दर्शक है और योगी भी, क्योंकि योगी योग के द्वारा अपना सम्बंध ईश्वर से बनाता है अत: वह भी ईश्वर की तरह तटस्थ द्रष्टा हो जाता है. वह कुछ करता भी है तो तब जब मानव बेहद मुश्किल में होता है और उसका बुद्धि-विवेक परास्त हो जाता है तब वह एक सुयोग्य शिक्षक की तरह उसे संकेत देता है और संकेत देकर फिर अपने स्थान से उसको देखता रहता है कि वह क्या करता है और कैसे करता है? पुनरुपलब्ध दिशा को वह किस अर्थ में लेता है? उपनिषद् कहता है कि जो ये समझते हैं कि वह और है और मैं और हूं, ये न उसे जानते हैं और न अपने को. वह तो गर्भसम स्थित है.'

'मैंने उस नागा बाबा को अपने में, गहरे में अनुभव किया और बारीन के मित्र की विश्लेषण प्रक्रिया से मैं प्रभावित होकर योग की तरफ आया, मीरा. ...अब तुम

समझ सकती हो कि एक योगी का अंत: अनुशासन क्या है और क्यों है? व्यक्ति के व्याकरण में अष्टाध्यायी ग्रंथ की क्या भूमिका है. पाणिनी ने सूत्रबद्ध व्याकरण से हमें क्या सौंपा है और कैसे सौंपा है? योग की शक्ति जिसे मिली वही समूचे मानव जीवन को एक समृद्ध दिशा की ओर स्वेच्छा से चलने के लिए प्रेरित करने लगा.'

योग धर्म का यही तो प्रथम सिद्धांत है कि योगी परमेश्वर के आदेश का अक्षरश: पालन करते हैं. उसमें उसे कोई हिचक-झिझक नहीं हो, उसे कोई डर-भय नहीं सताए, कोई चिंता-फिक्र नहीं घेरे–

'पर योग तो...मीरा अधूरे वाक्य को छोड़कर अरविंद की ओर देखने लगी.'

'कठिन और जटिल मार्ग का नाम नहीं है. न उसके लिए कठोर तप करने के लिए पर्वत कंदराओं में धूनी जमाने की आवश्यकता है. हमें मात्र दैहिक योग तक अपने को सीमित नहीं रखना है. आधिभौतिक को पार करते हुए आध्यात्मिक योग की ओर अपने को ले जाना है और उसके लिए अटूट आत्मबल की आवश्यकता है और आत्मबल तो शिशु से लेकर सबसे बड़े (जिसे हम बड़ा मानते हैं) तक में विद्यमान है. वह गृहस्थ-अगृहस्थ के बीच रेखा नहीं डालता. ...और तुम तो मीरा अब यहां मां के रूप में अवतरित हो चुकी हो, व्यक्तिवाचक संज्ञा की सीमाएं लांघकर सर्वसंज्ञा में प्रवेश पा चुकी हो, इससे बड़ी और योग-साधना क्या होगी? आगे से तुम्हारा स्थान मेरे साथ होगा.' अरविंद यह सब कहने के लिए कब से अवसर की तलाश में थे. अवसर आया तो बंद दरवाज़ों और बंद खिड़कियों को बिना छेड़े, स्वत: ही चला आया.

'नहीं-नहीं. मैं इस योग्य नहीं हूं.'

'वह किस योग्य है, यह जान लेने पर व्यक्ति ईश्वर हो जाता है और तुम अभी ईश्वर नहीं हुई हो.' अरविंद ने कुछ रुककर कहा, 'विधि का विधान इसीलिए रहस्यमय है, मीरा. उसने मुझे यहां भेजा, तुम्हें भी यहां भेजा. वह यह अच्छी तरह से जानता है कि उसे मुझसे क्या काम लेना है और तुमसे क्या? वह जो काम लेना चाहता है, हमें वही तो करना है. न तुम अपनी इच्छा से यहां आयी हो और न मैं. जब हम दोनों उसकी इच्छा से संचालित हैं तब हमें कठपुतली होकर बना रहना है क्योंकि हमारी डोर तो उसके हाथ में है. योग धर्म का यही तो प्रथम सिद्धांत है कि योगी परमेश्वर के आदेश का अक्षरश: पालन करते हैं. उसमें उसे कोई हिचक-झिझक नहीं हो, उसे कोई डर-भय नहीं सताए, कोई चिंता-फिक्र नहीं घेरे– वह अलमल हो और पुन: शिशुवत जीवन को जीने

लगे. ...तुम मां हो, मीरा. अब से तुम्हारा यही नाम होगा–मां.'

'मां...!...मां...! मां...' मीरा ने दोहराया. अरविंद, मैं ऑरी मोरिस्से के पुत्र की कभी मां बनी थी. वह मेरा पहला पति था. हमने अपने पुत्र का नाम आंद्रे रखा था. परंतु वह परम संगीत अधिक दिन नहीं चल सका. मेरा मातृत्व छिन गया. हममें तलाक हो गया. तबसे मैं एकाकी जीवन जीने की अभ्यस्त हो चली थी. न मेरा कोई मार्गदर्शक था, न गुरु-आचार्य. मैं अकेले ही चल पड़ी थी, चलती रही थी और मेरा चलना अटल विश्वास के साथ हो रहा था. कतई द्वंद्व नहीं था. मेरा चित्त एकदम शांत हो चला था. मुझे चेतन और सतत एकता की अनुभूति ने अपनी विशाल बांहों में भर लिया था. ईश्वर है क्या? कहां है? क्या अलग-अलग धर्म का ईश्वर अलग है? मुझे इनके उत्तर आने लगे थे. मैं नहीं जानती थी कि मुझे वे उत्तर कहां से मिलते थे? कौन देता था?

'सब कुछ जैसे पूर्व निश्चित था. एक दोपहर मैंने अपनी जिज्ञासाओं को धूप लगाने की दृष्टि से अलगनी पर डाल दिया था.'

'एक गोरा-चिट्टा, मज़बूत कदकाठी का, भूरी आंखों वाला नवयुवक अलगनी पर फैले कपड़ों को निहारता हुआ बोला, 'काश हर इंसान में ऐसी ताकत हो पाती कि वह अपने सर्वस्व को उसकी खुली धूप में डालकर और तुम्हारी तरह निश्चिंत होकर उनकी ओर तटस्थ दृष्टि से देख पाता. यह साहस की सीमा है. ...मैडम.'

'मैं साश्चर्य उसकी ओर देखने लगी. ऑरी मोरिस्से को वह जानता था. वह कहने लगा, 'मैं अकेला हूं–पॉल रिचार्ड हूं. वेदांत योग की धुन में रमा हुआ पाश्चात्य आध्यात्मिकता के उन सूत्रों को टटोलता रहता हूं, जिनमें वेदांत योग से सहायता लेकर अपूर्ण को पूर्ण करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है. बशर्ते तुम...'

'मैं क्या?'

'एक फ़ौजी किस्म के उथले सोच-विचार वाले का हाथ थामने के लिए राज़ी हो सको.'

'इतनी जल्दी तुम इस निष्कर्ष पर कैसे जा पहुंचे, रिचार्ड.'

'काश, मेरे पास इसका उत्तर होता.' पॉल रिचार्ड कह रहा था, 'कई दफ़े जीवन के पास मोड़ स्वयं चलकर आ जाते हैं और स्वत: ही अपना खुलासा करने लगते हैं. शायद इसके पीछे भी कोई ऐसी ही बात हो, जिसने मेरे ज़ेहन को तुम्हारी तरह अपने सर्वस्व को अलगनी पर डालने के लिए विवश कर दिया हो. इसमें मैं तुम कहीं नहीं हैं. यह तो धूप का स्वभाव है, वह जिस पर पड़ती है, उसे अपने जैसा पाक-पवित्र और चमकदार बना देती है.'

'मैंने उससे समय मांगा. उसने हां कर

दी. वह दो-एक दिन छोड़कर मिलता रहा. वेदांत पर चर्चा करता रहा. चर्चा करते हुए वह यह कहना नहीं भूलता था– मैंने पढ़ा और समझा है कि जहां सूर्य भी निष्प्रभ हो जाता है, शाश्वत प्रकाश वहां से प्रारम्भ होता है. वहां विचार नहीं मुक्ताकाश होता है. जाने वह क्या-क्या कहता-बुनता जाता था!'

'अब मेरे लिए उससे हाथ झाड़ना कठिन होने लगा. एक संध्या जब वह मुझे एक रेस्तरां में ले गया तब वह कहने लगा, 'पवित्र प्रेम ईश्वरीय अनुभूति का सबसे अनोखा और सहज रास्ता है.''

'रिचार्ड, मैं प्यार की शक्ति को पहचानती हूं. प्रेम के लिए किसी विशेषण की आवश्यकता नहीं है. वह स्वत: ईश्वर का एक छायारहित आधार है.'

'मैं इतना जानता हूं कि अनुभव का जैसा भी रूप-स्वरूप हो और जितना भी प्रभावशाली क्यों न हो, उसे अपनी अस्मिता पर इतना छाने मत दो कि तुम्हारी सत्ता ही हाथ से निकल जाए.'

'मैं इसका निर्णय तुम पर ही छोड़ता हूं, मुझे कोई जल्दी भी नहीं है और न मेरे बिना कभी कोई काम रुका है. सब कुछ स्वत: ही चला है. उसे मानो तो या न मानो तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता.' पॉल रिचार्ड कह रहा था.

'आखिर मैंने एक माह बाद हां कर दी. अब हम पुन: विवाहित थे. वह भी खुश था और मैं भी. वह मेरी खातिर आपसे मिलने आया था. मैंने उसे समझा दिया था कि किसी से उलझना नहीं है. अब वह अमेरिका पहुंच चुका है. शायद यह मानकर कि वहां उसे सुकून मिल सकेगा.'

यों हम दोनों फिर से अजनबी बन गये. चलते समय उसने कहा था, 'मैं समझता हूं कि तुम उचित जगह पर आ गयी हो. मैं यहां नहीं रुक सकता, क्योंकि मेरी शोध दूसरी तरह की है.'

'मैं कुछ नहीं बोली. सिवा इस पीड़ा के मुझे कोई पीड़ा नहीं थी कि एक बार फिर मां बन जाती और उस दिव्य अनुभूति से जुड़ पाती जिससे मैं वंचित रह गयी हूं. परंतु आज आपने मेरी उस महती आकांक्षा को भी पूरा कर दिया, अरविंद. परंतु मैं नहीं जानती कि...'

'पहली बात तो यह है कि मैंने नहीं, जो कुछ किया– करवाया है, वह उसने, जिसके बिना इशारे के पत्ता तक नहीं हिलता. पता नहीं उसे तुमसे अभी और क्या करवाना शेष है. ...ध्यान रखिए, आज से अब से तुम मां हो.'

'मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है, अरविंद.'

'तुम्हें भी स्मरण रहा होगा, जब तुम यहां पहली बार मुझसे मिल रही थी तो तुम अतिमानस में वस्तुओं का स्वरूप देख रही थी– उन वस्तुओं के स्वरूप को

भी पहचान रही थी, जिनका जन्म अभी नहीं हुआ था परंतु निकट भविष्य में होने वाला था. ...तब तुमने मन-ही-मन मुझसे प्रश्न किया था कि 'तुमने जो देखा है, क्या वह भविष्य में घटेगा भी.' मैंने कहा था– 'हां.' इसके बाद तुम्हारा पति पॉल रिचार्ड उठ खड़ा हुआ था. तुम्हें भी उठना पड़ा था.' अरविंद ने सहज भाव से कहा और वे भित्ति के पार देखने लगे.

'आपको याद है वह तूफानी रात. जब तूफान अर्द्ध रात्रि के करीब अचानक आया था. तेज़ वर्षा भी होने लगी थी. तब मैं अपने कमरे की खिड़कियां बंद कर सोचने लगी थी कि आपके कमरे की खिड़कियां और दरवाज़ा तो प्राय: खुले ही रहते हैं, न क्यों न उन्हें जाकर बंद कर दूं. मैं गयी तो मैंने देखा कि खिड़कियों के खुली होने और उनके बजने से आपको कोई फर्क नहीं पड़ रहा है. आप चुपचाप मेज़ पर बैठे लिखने में व्यस्त हैं. आप पर उस भयानक तूफान का कोई असर नहीं था. आश्चर्य यह भी था कि अंदर आते ही हवा शांत हो रही थी और पानी की एक बूंद भी अंदर नहीं आ रही थी. ऐसा क्यों था?'

'मैं नहीं जानता.' अरविंद ने बहुत धीमे-से कहा. वे फिर भित्ति के पार देखने लगे, मानो उधर से कोई आने में है. शायद उन्हें किसी का इंतज़ार हो, यह सोचकर मीरा उठ गयीं. नमन किया और चुपचाप चल पड़ी यह सोचते हुए कि उनको समझ पाना टेढ़ी खीर है. वे वक्त को मोड़ सकते हैं और वक्त के साथ चुपचाप सीधे बच्चे की तरह उंगली पकड़कर चल भी सकते हैं. वे कब, क्या करेंगे, यह नहीं जाना जा सकता. उनका एक ही उत्तर होता था, 'मैं वही करता हूं जिसके करने का मुझे आदेश मिलता है. उसमें अपनी तरफ़ से कुछ नहीं जोड़ सकता. जोडूं तो तब जब दिमाग में कुछ और जन्मे, करवटें ले और उत्पात मचाए. ऐसा कभी होता नहीं है.' क्यों नहीं होता? मीरा यहां आकर ठहर जातीं और अपने मन को भी वहीं खड़ा रहने का आदेश देकर आगे बढ़ने लगतीं.

●●●

24 नवम्बर, 1926 का पावन दिन. सब कुछ अनुकूल और उत्सवमयी. अद्भुत शांति. पवन मग्न. प्रकाश प्रसन्न. धरिणी मलयजी. आसमान रंगाभिभूत. प्रकृति नीरव परंतु स्मित भरी. खगदल सरगमी. हर आहट मौन. दृष्टि अपलक निहार रही थी.

मां व्यवस्था में तल्लीन. आश्रमवासी सचेत हुए अपने उत्तरदायित्व का पालन करने में आलुप्त. संकेतों से क्रिया संचालन. दबे पांव से आगमन.

अब मीरा मां के रूप में जानी-पहचानी जाने लगी थी. वह आज के दिन विवेकानंद का स्वर सुन रही थी– असीम शांति का एक समुद्र जिसमें कोई छोटी लहर तक नहीं उठ रही थी. दिव्य दृष्टिपात का

अंतर्दर्शन पुनरावर्तन की सीमा में प्रवेश कर चुका था. परमात्मा का स्वर मौन मुखर था.

आज व्यवस्था पहले से कुछ भिन्न थी. सबसे पहले मां ने प्रवेश किया. वह श्वेत वस्त्रों में आवेष्ठित थीं. उनके पीछे-पीछे धीरे-धीरे अरविंद ने प्रवेश किया. वे भव्य और प्रकाश वलय से आवृत्त अति दिव्य दृग्गोचर हो रहे थे. वे कुर्सी पर बैठ चुके थे. मां उनके पास दाहिनी तरफ एक छोटे-से मूढ़े पर विराजमान थीं.

यह परिदृश्य लाइब्रेरी हाउस के बरामदे का था, जहां आश्रमवासी एकत्र हुए थे. किसी को कुछ पता नहीं था. सब मूक बने इस पावन एवं अलौकिक दृश्य से अभिभूत हो रहे थे. एक सर्वथा दिव्य वातावरण था. अरविंद का बायां हाथ मां के सिर पर था और उनका दूसरा हाथ आश्रमवासियों को आशीर्वाद दे रहा था. पौनेक घंटे का ध्यान चला. नीरवता स्तब्ध रह गयी. मां के हाथ के पीछे अरविंद ने हाथ रखा. अब दोनों आशीर्वाद दे रहे थे.

सबको अद्‌भुत अनुभूतियां होने लगी थीं. ऐसी अनुभूतियां जो उससे पहले उन्हें कभी नहीं हुई थीं.

एक आवाज़ देर तक प्रतिध्वनित होती रही, जबकि उस आवाज़ को किसी ने पहचाना नहीं था. वह आवाज़ थी– गुरुदेव अरविंद एकांतवास ले रहे हैं. अब वे सांध्य वार्ताओं के लिए उपलब्ध नहीं होंगे. विभिन्न अवसरों पर सामने आयेंगे और आशीर्वाद देंगे.

आज से यह व्यवस्था आश्रम के रूप में परिवर्तित हो रही है. मां इस व्यवस्था का संचालन करेंगी और आश्रम को मार्गदर्शन प्रदान करेंगी.

अरविंद का संदेश प्रसारित हुआ, '24 नवम्बर, 1926 के दिन की भौतिक में श्रीकृष्ण का अवतरण हुआ था. कृष्ण अतिमानसिक ज्योति नहीं हैं. कृष्ण के अवतरण का अर्थ है आधिमानसिक देव का अवतरण जो वास्तव में अपने आप तो अतिमानसिक नहीं हैं परंतु अतिमन और आनंद के अवतरण के लिए तैयारी कर रहे हैं. कृष्ण आनंदमय हैं, वे आनंद की ओर अभिमुख विकास को अधिमानस के माध्यम से सहारा देते हैं.'

सन्नाटा पथरा गया. क्या अरविंद श्रीकृष्ण के साथ देह, मन और आत्मा से एकरूप हो गये हैं? क्या भागवत चेतना उतरकर अरविंद में समा गयी है?

इसी समय एक बुलंद आवाज़ फिर सुनाई पड़ी, 'आगामी चरण अतिमानस के माध्यम से संस्कृति के रूपांतरण का है. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरुदेव अरविंद एकांत साधना में अनिश्चित काल के लिए जा रहे हैं.'

कुतूहल आश्चर्य मिश्रित होकर आंखें मल रहा था. उसने जो देखा-सुना था, उस पर विश्वास नहीं हो रहा था.

अरविंद पहले उठे, बिना कुछ कहे उठे. सबको मौन खड़े होकर अपनी दिव्य आंखों से निहारा, उनके प्रति ममता-करुणा उड़ेली और उनके प्रति आश्वस्ति भाव दर्शाते हुए शुभाशीर्वाद प्रदान किया.

सब चित्रलिखित से, करबद्ध हुए, नत नयनों से उस मंत्र-मुग्ध वातावरण का अंतर्मुखी नव संगीत सुन रहे थे. उनमें नव-नवल निर्झर उमंगित हो रहा था. कभी उनको शरद् में बहती भागीरथी की मद्धिम लय मुखर हो रही थी.

कल्पना अवाक् थी. स्वप्न नयनोन्मीलित हुए अपलक देखे जा रहे थे. भावनाएं चरमोत्कर्ष से आबद्ध थीं. सृष्टि अवगुंठन उठाये स्व को अवलोक रही थी. नि:स्वन था सम्पूर्ण जगत् व्यवहार. थिरक रहे थे अंत:प्राण. अंत:प्राणों में तीर्थोत्सव!

वे दोनों अब तक मंच से ओझल हो चुके थे. रिक्त पड़ा था मंच. मूंदे हुए थे अब नयन. उन नयनों के सामने खड़े थे अरविंद और मां. दोनों धवल वस्त्रों में श्वेत कमल से खिले हुए थे. सबको सुनाई पड़ रहे थे अरविंद के अमर स्वर.

पहले मैंने 'उर्वशी' और 'प्रेम और मृत्यु' से अपने मन की उच्च स्थिति को व्यक्त किया था. फिर मुझे महाभारत के वन पर्व में उल्लिखित गाथा ने चेताया. तब से मैं निरंतर प्रेम, मृत्यु और धरती पर जीवन के सम्बंधों की अमर-गाथा को अपने में अनुभव कर रहा हूं. मुझे विश्वास है मनुष्य मन को परात्पर तक उठाने और विस्तीर्ण करने में.

मुझे प्रभु ने आदेश दिया है कि धरा और स्वर्ग को एक बनाओ. संसार को भविष्य के चिर सौंदर्य को आत्मसात् कराओ. उसे आश्वस्त कराओ कि ऐहिक अनागत यहीं धरा पर है. धरा पर ही परिपूर्ण जीवन का दिव्य सौष्ठव है.

ओ भू रूपांतर के प्रणेताओं, मिली है तुम्हें वह क्षमता.

तुम करो आत्मा के दुर्गम प्रांतों को पार.
करो संस्पर्श बलदायिनी जाग्रत मां का...
मिलो सशरीर उस सर्वशक्तिमान से.
बनाओ असंख्य शरीरधारियों के जीवन अभिन्न, एक.

हे धरावासियो, आर्य पुत्रो, आर्यपुत्रियो, मैं सदा तुम्हारे साथ हूं, पास हूं, और तुम में हूं. निस्संदेह मुहूर्त में एक बीज बोया जाएगा. होगी स्वर्ग की एक शाखा धरा पर पुन:रोपित.

मैं देह, मन और आत्मा से श्रीकृष्ण के साथ एकमएक हो रहा हूं. जब मैं अलीपुर की कारा में पड़ा विश्वासों की बखिया उधेड़ने के संघर्ष से जूझ रहा था और अपने तेजस्वी वकील के लिए कुछ नोट्स बनाकर लाया था क्योंकि मुझे आशंका थी कि ब्रिटिश सरकार मेरे दैहिक अस्तित्व को मिटाकर अपना पथ निष्कंटकमय बनाना चाहती है, तब वासुदेव ने मुझे दर्शन दिये

थे. यही श्रीकृष्ण न्यायालय में उपस्थित हुए थे और मुझे पूरे न्यायालय में वे ही वे दृष्टिगत हुए थे– जज में भी वे ही थे, पक्ष-प्रतिपक्ष के वकील भी वे ही थे, गवाहों में भी वे ही थे. फिर मैं अपने बनाये नोट्स का क्या करता? मैंने उन्हें फाड़ दिया. तार-तार कर दिया और मैं तब से उनके पीछे चलता आ रहा हूं. आज भी वे मुझे उठाकर ले जा रहे हैं. मुझे बता रहे हैं कि 'गीता' के संदेश के बाद मुझे धरतीवासियों को एक संदेश और देना था और उनके हृदय पर छाये कुहरे को हटाना था. ...अरविंद अब तुम धरती पर मेरे अर्जुन हो. मुझे सुनो, हृदयंगम करो और अपने दिव्य चरित से उसे इस धरती पर साकार करो. तुम्हें यह विश्वास पैदा कराना है कि धरती भी स्वर्ग है. स्वर्ग और धरती दोनों ही मेरी सृष्टि हैं. ये दोनों अपनी-अपनी सत्ता में बने रहकर ही पूर्ण हैं. तुम अतिमानस के माध्यम से रूपांतर का वरण करो. मैं इसीलिए यह परामर्श दे रहा हूं कि तुम अपने को अकेला मत समझो. मेरे एकांतवास का अर्थ भी यही है, जिसका पल-दो पल तुम भी अनुभव कर पाये होगे कि अखंड शक्ति, अप्रतिम ज्योति, अपूर्व विराट सौंदर्य, अक्षय शिव कांति और अलौकिक तत्त्व तुममें अवतरित होने लगें और अतिमानस का अवतरण हो!

...उस अपूर्व व्यापार को हम कैसे जानें कि जब एक अर्द्ध-पाशव जीव, जिसके भीतर पहली बार मानसिक स्पंदों का प्रवेश हुआ था. गुरुदेव अरविंद के शब्दों में वह अज्ञात के भीतर एक साहसिक उत्क्रमण था.

ध्यातव्य है कि मेरा यह एकांतवास उस महा प्रयोजन हेतु है, और तब तक है, जब तक वह चाहता है. यह कोई स्थाई व्यवस्था नहीं है और तुम्हारे सौभाग्य से मां आ गयी हैं. उन्होंने यहां की व्यवस्था का भार सहर्ष अपने कंधों पर ले लिया है और अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने में सब तरफ से मुझे मुक्त कर दिया है. इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं तुम्हारे से दूर हो गया हूं. मैं तुम्हारे बीच आता रहूंगा.

आवाज़ का कम्पन तिरोहित ध्वनि प्रलोपित अवसन्न परिवेश धीरे-धीरे नयन खोलता, मन संजोता और आत्मा के साथ उठता, उठा. चल पड़ा. मौन को लिये मौन के पास, जहां साधना साधक बनने की तैयारी करने लगती है.

●●●

अब आश्रम की गतिविधियों में अत: अनुशासन पनप रहा था. समय का सर्वाधिक सार्थक प्रयोग इस दिशा में बढ़ने लगा था. वह दिन सबसे मनोरम आत्मीयता से भरा और जीवंत चेतना से जुड़ा था, जिस अपूर्व दिन श्री अरविंद बाहर निकलते थे और भक्तों, श्रद्धालुओं और साधकों को दर्शन देते थे. दर्शन अलौकिक थे,

अद्‌भुत थे और दिव्य चेतना से भरपूर थे.

मां आयीं. सब ने उन्हें नमन किया और उन्होंने आशीर्वाद स्वरूप सहज मुस्कान के साथ उनके नमन का विनम्रतापूर्ण उत्तर दिया.

ध्यान शुरू हुआ. और पल-भर में मौन छा गया–देह पर, मन पर और आत्मा पर.

मां कह रही थीं, साधक, आश्रमवासी आदि सुन-देख रहे थे. उन्हें लग रहा था कि अचानक उनके बीच गुरुदेव अरविंद आ विराजे हैं. उन दिनों उन्हें अद्‌भुत, असाधारण और देदीप्यमान सत्ताओं से सम्पर्क होने लगा. ये सब आश्चर्यचकित थे. यह सब मैंने गुरुदेव को बताया तो वे सहज मुस्कराकर शांत रह गये. जब मैंने उनसे कहा, 'आप कुछ स्पष्ट कीजिए.' वह कहने लगे, 'यह अधिमानस का कृतित्व है. यह वह सफलता नहीं है, जिसकी हमें अपेक्षा है. इस धरती पर अतिमानस की स्थापना का हमारा प्रयास है. विचारणीय यह है कि हम यह जानें कि नवल संसृति का सृजन करने, अपनी सर्वांगता में अतिमानसिक संसृति की रचना करने के लिए तात्कालिक सफलता के सम्मोहन से अपने को कैसे बचायें? कैसे उससे छुटकारा पायें?'

सन्नाटा और सन्नाटे में उतर गया. सोच से आगे की अंतस् क्रियाएं सक्रिय हो उठीं परंतु प्रत्यक्ष में शून्य विद्यमान था. ऐसा शून्य जिसके आगे कोई शून्य नहीं होता. मां पुनः कह उठीं, 'ऋग्वेद में कहा है कि अग्नि ही है जो कार्य करती है. परंतु अभी हमें यह ज्ञात नहीं हो सका है कि जड़तत्त्व में बदलाव लाने के लिए अग्नि कैसे कार्य करती है. काश, हमें यही प्रक्रिया मालूम होती तो इस समय हम अपने लक्ष्य के सामने होते. ...रूपांतर प्रकरण पहली बार सामने आया है. उस रास्ते के हम राही हैं, जिस रास्ते का हमें पता नहीं है कि उसका अस्तित्व है भी या नहीं. ...उस अपूर्व व्यापार को हम कैसे जानें कि जब एक अर्द्ध-पाशव जीव, जिसके भीतर पहली बार मानसिक स्पंदों का प्रवेश हुआ था. गुरुदेव अरविंद के शब्दों में वह अज्ञात के भीतर एक साहसिक उत्क्रमण था.'

विषय जटिल बनता गया. यह प्रक्रिया शताब्दियां चाहती है. मां नहीं चाहती कि इतने दीर्घकालीन समय की ओर सबको ले जाया जाए. भागवत सत्य में निवास करने का लक्ष्य अभी दूर है. मां मानसिक रूपांतर को अभ्यास में लाती थीं. नीरवता और प्राणिक रूपांतर की शांति के लिए अभ्यास कराती थीं. नीरवता में अपने को छोड़कर उसके लिए चल पड़ना ही शांति अभियान है. परंतु नीरवता में जीना सहज नहीं है, क्योंकि जड़ संस्कारों से मुक्ति पाना कठिन अभ्यास है.

मां उनके बीच में से उठकर जा चुकी थीं. चतुर्दिक् शांत मेले का-सा परिदृश्य

था. वहां बोलने से अधिक मौन बने रहने में आनंद आ रहा था. वह सांकेतिक भाषा का प्राय: परस्पर प्रयोग कर रहे थे.

मां सीधे अरविंद के कमरे में पहुंची. अरविंद लेखन में व्यस्त थे. मां की पदाहट पाकर अरविंद ने कहा, 'आ जाइए.'

कुर्सी पर बैठने के बाद मां ने पूछा, 'क्या सावित्री को लेकर निमग्न हो?'

'हां, मीरा, मेरे लिए सावित्री और अपनी साधना का लक्ष्य एक ही है. मैं इस कृति के बीच में से हट चुका हूं. जो आना है, बनना है, यह ऊपर से उसके पास से आये जो वास्तव में इसका कृतिकार है. जहां मुझे लगता है कि भूले-भटके मैं उसमें दाखिल हो गया हूं या मैंने उसे सुनने में गलती की है, वहां मैं ठहर जाता हूं और शांत बैठा हुआ उसकी आवाज़ सुनने के लिए तत्पर रहता हूं.' जैसे वह कहता है–

क्यों आयी मृत्यु से जकड़ी इस गूंगी धरिणी पर!

इन तटस्थ अम्बर तले, यह अज्ञान भ्रमित मर्त्य जीवन है

एक बलि पशु के नाई है जो बंधा है, काल के खम्भे से

ओ आत्मा! ओ अमर शक्ति!

बेबस हृदय में तू क्यों दुख रोपित करने आयी है?

क्या रस शून्य शुष्क नेत्रों से हतभाग्य की प्रतीक्षार्थ हुआ है आगमन तेरा?

उठ, ओ आत्मा! कर परास्त काल औ मृत्यु को.

कुछ देर तक ठहरे रहे. मां साश्चर्य उन चरणों में गुरुदेव श्री के दर्शन करती रहीं और सोचती रहीं कि इससे जीवन-जगत् को एक नया आधार मिलेगा. हर एक चरण इसका सिद्ध मंत्र है. फिर भी वह पूछने लगी, 'कब से यह प्रयास चल रहा है? कब आहुति का समय आयेगा और कब सबको ईश्वर का शब्द-घोष सुनाई पड़ेगा.'

अरविंद सस्मित भरकर रह गये. सोचते रहे. फिर अचानक बोले, 'यह चिंता उसकी है, मेरी नहीं. लगता है, इससे पूर्ण रूपांतर योग बनकर रहेगा.'

तुमने अपनी विशिष्ट सत्ता को रेखाचित्र बनाकर उस परम सत्ता की ओर जो संकेत किया था, वह क्या था, मीरा?

'तब पेरिस में प्रभाववादी चित्रकार छाये हुए थे और मैं कला, संगीत, साहित्य और इतिहास में दिलचस्पी रखती थी. चित्र बनाती थी. शायद माने जो उस समय का प्रख्यात प्रभाववादी चित्रकार था और बाद में जिससे मेरा परिचय भी हुआ था, की चित्रकारी ने मेरे अंतर को कहीं गहरे छुआ था. फिर भी, मैं उसके प्रभाव से मुक्त थी और सालों बाद मेरे कुछ चित्रों के प्रदर्शन ने लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा था. उसके बाद धीरे-धीरे मुझमें एक परिवर्तन होना शुरू हुआ और वह परिवर्तन यह था कि मुझे आध्यात्मिक तथा आंतरात्मिक

सम्बंधों का सम्बोध होने लगा था. तब मुझे जिस सत्ता का प्रबोध अपनी ओर खींचने लगा था, उसी को मैंने आकार देने का प्रयास किया था.' मीरा ध्यानमग्न होकर कह रही थी.

'और तुमने अपने अंतर के कृष्ण को अभिव्यक्ति दे डाली.'

'उसे बाद में पहचान भी लिया, अरविंद.'

दोनों खिलखिला कर एक-दूसरे को देखते रह गये. अरविंद पुन: पूछ रहे थे, 'तुमने उसके लिए कोई कविता नहीं लिखी, मीरा?'

'क्यों नहीं लिखी? लिखी, अरविंद, और वह क्रम अनवरत जारी है.'

अरविंद ने एक पल के लिए मीरा को ध्यान से देखा, फिर पूछा, 'कभी आभास नहीं होने दिया.'

'आभास तो अभी हो सकता है, अरविंद.'

'अवश्य, मीरा.' अरविंद ने जिज्ञासु की सहज मुद्रा में कहा और अपनी दाढ़ी को सहलाया.

मीरा ने अपने अरुण अधरों को वीणा के तारों की तरह छेड़ा और कहा, 'एक अनावृत सत्य, एक निर्वैयक्तिक शून्यता और भौतिक अहंकार ईश्वर की निशा में घुला हुआ मुझे प्रभु की व्यापकता में विचरण करा रहा था. बिना आकार का वृत्त मेरे सामने था और थी वह कविता– **इस अनंत महाशून्य में ही था निहित आखिरी संकेत / या वह जो यथार्थ है, था बना वह अज्ञेय ही / उस एकमेव ब्रह्म में था कर दिया सर्वस्व शून्य / था उसने मिटा दिया यह अज्ञानी विश्व अपने एकाकीपन से / औ समेट लिया था आत्मा को अपनी सनातन शांति में.**

'ओह! इतना सुंदर पाठ, मीरा.'

'यह तुम्हारा ही है, अरविंद.'

'जहां साकार निराकार नहीं रहा, मीरा, वहां मेरा-तुम्हारा कहां शेष रह सकता है.'

'इसीलिए मैं कविता करती हूं, अरविंद तुम में बहती हुई उस सरिता की तरह जो अजन्मी है, अजर-अमर है और अनबहे भी सदा बहने की मुक्तावस्था की अनुभूति कराती रहती है. प्राण का पुलक संगीत अंतर्धान होकर उसी सागर में तो मिलता है जो सर्वव्याप्त है और जिसके आकार की कल्पना अज्ञात है– न सतह है और न थाह है उस सागर की, फिर आकृति का प्रश्न कैसा.'

'मुझे नहीं मालूम था कि तुम मेरे अधरों से मेरी कविता के अंतर्मन, प्राण और परमेश्वर की इस तरह साक्षी बन सकती हो, मीरा कि....'

'कविता तुम्हारी और मेरी नि:स्वन ध्वनि संगीत बन सकती है. मैं जब-जब वीणा बजाने लगती हूं, अरविंद. उच्चतर लोकों से कुछ चीज़ों को नीचे उतार लाने

के लिए मेरे प्राण पुलक प्रेरणा से भर उठते हैं. हर कविता का संगीत भीतर से निश्चल नीरव बनने से, अंतर खुलने से और स्व का शून्य पाकर आता है, मुझे ऐसा लगता है, अरविंद, कविता संगीत, कला आदि उसके अचेतनता की सर्वज्ञात सहज चेतना है. फिर भी, मैं नहीं जानती कि ऐसा क्यों होता है कि तुम्हारे सामने जब-तब, ठीक आज की तरह, तुम्हारी अनुपस्थिति में भी, तुम्हारे उपस्थित होने की गहन अनुभूति मुझे अपने साथ बहा ले जाती है.' मीरा का हृदय गद्‌गदानुराग से छलक रहा था. उनका दाहिना हाथ कम्पित हो रहा था. उनकी वीणा के तारों पर से उंगली हट जाने पर भी प्रकम्पन था.

'सचमुच मीरा, तुम सावित्री की अनुभूतियों में बहुत गहरे उतरकर एक अलिखित अकविता, एक अनिर्मित संगीत, एक अदृश्य कला और एक अज्ञात लोक को सर्वव्यापी बनाने में संलग्न हो.'

'नहीं, अरविंद, ऐसा कुछ नहीं है और जो कुछ है भी या होता हुआ लगता है, वहां मेरे होने का प्रश्न नहीं उठता, वहां यदि कोई है तो वो तुम हो, एकमात्र उस अनिर्मिति के निर्मितिकार–तुम, अरविंद तुम! अकेले तुम.'

'मीरा, मैं कहां हूं? वहां दो तो रह नहीं सकते– मैं रहूंगा तो वह वहां नहीं रहेगा. वहां तो वही है, अकेला और एकमात्र वही. यमुना गंगा में मिलकर फिर यमुना कहां रह जाती है? इलाहाबाद से आगे यमुना कहां है? उसका नहीं बने रह पाना ही यमुना को गंगा के अक्षय रूप में बदल देता है. आकार को इतना निराकार होने दो कि निराकार भी न रहे, तभी उससे साक्षात्कार होगा, बांसुरी की ध्वनि सुनाई पड़ेगी और रास की अनुभूति होगी.' यह कहते-कहते अरविंद की आंखों से उनका हृदय छलछला आया.

मीरा भी अपने को नहीं रोक पायी. उसमें एकांत पिघलकर बह उठा. कल्पना की अंत: सलिला निसृत हो उठी. स्वप्न मकरंद बने महक उठे.

'अब मुझे चलना चाहिए, अरविंद, अन्यथा सुबह शाम का आभास खो बैठेगी. अंततोगत्वा दर्शनार्थियों का भी आप पर उतना ही अधिकार है, शायद उससे भी बढ़कर जितना हम आश्रमवासियों का.'

'हां, मीरा, हां.'

'कहां-कहां से वे श्रद्धा सुमन लिये आये हैं आपको गाते-भजते हुए निहाल होने और ईश्वर की अननुज्ञात अनुभूति के दर्शन लाभ लेने?'

अरविंद ने गहरी सांस भरी और मुंदी आंखों को खोला, फिर कहा, 'उनकी भक्ति उन्हें नहीं छोड़ती. वे ईश्वर ही हैं. वे अपने ईश्वर को पहचानें इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं कि वे जिसे देखने-पाने की उमंग-उत्साह से छलकते हुए यहां आये हैं, उसे अपने को त्याग कर, घर बैठे ही पा लें. उन्हें

कहीं आना-जाना नहीं पड़े, कोई कष्ट उठाना नहीं पड़े और वे परम प्रकाशित सत्य के साक्ष्य बन सकें.'

'वह भी होगा, अवश्य होगा.'

'पर समय लगेगा, मीरा. समय भी कम नहीं, बहुत अधिक लगेगा.'

'पर होगा, अरविंद, अवश्य होगा. इसी के निमित्त तो उसने तुम्हें कारा में डालकर मुक्ति से आत्मसात् कराया था और इसीलिए वह तुम्हें यहां तक लाया है कि गीता के बाद का अध्याय तुम 'सावित्री' से पूरा कर सको.'

'गीता' भी उसकी है, और 'सावित्री' भी. मैं नहीं...कहीं भी नहीं. वो, बस वो. एक वो समस्त प्राणों का आधार वो. एक बार वह इत्मीनान से सावित्री में आकर बैठ जाए तो मुझे बार-बार उसके लिए पुनर्लेखन नहीं करना पड़े. वो आता है, ललचाता है, लिखता है और भाग जाता है. उसकी यह आदत बहुत पुरानी है, मीरा. उसे तो गोपियों ने ही नाच नचाया था, ईश्वर होने की सारी अकड़ को दिन में तारे दिखा दिये थे. भागा वो था, गोपियां कहीं नहीं गयीं. उन्होंने तो उस माखनचोर को एक बार पकड़कर अपने हृदय के खूंटे से ऐसा बांधा और बांधकर ऐसा खुला छोड़ दिया जैसे पतंग को हवा के साथ लहराने उसका उड़ैया छोड़ देता है और जब जी चाहे उससे ठुमका लगवाता है, उसे अपने पास खींचता और अपने से दूर ले जाता है लेकिन लगाम अपने हाथ में रखता है. वे गोपियां कहां से लाऊं, मीरा, इसीलिए इन भक्तों को उस गहरी आत्मानुभूति के निकट लाने की चेष्टा करता हूं, जिससे वो, एक बार इनके हाथ लग जाए तो... बस फिर क्या बचता है.' अरविंद गहरे में उतरते गये, पलकों को भिगोते हुए और डूबने से बेखबर होकर डूबते हुए. यह जानकर जिसे तैरना नहीं आता है, वह डूब नहीं सकता क्योंकि बचाने वाला वो वहां खड़ा होता है.

मीरा उठ खड़ी हुई. प्रकाश परावर्तन हुआ. गति द्युतिमान् हो उठी. नमन की मुद्रा पृष्ठभूमि का संगीत बन गयी. आंतरिक स्रोत के निर्झर झिलमिला उठे. गीति-अगीति के भेदाभेदी बंधन स्वत: ही खुल गये. निबंधनमयी चेष्टाएं सामवेद बन थिरक उठीं. अरविंद देखते हुए आंखें बंद किये रहे और अनसुने सुनते रहे– सामानी व आकृति समाना हृदयानि व भावना-संकल्प समान हों. हृदय समान हो.... वे उठना चाहते थे परंतु उठे नहीं. सोचते रहे, मीरा आल्फासा को मीरा बनकर आना था, वह आयी समस्त बंधनों से मुक्त होकर ईश्वर को खोजते-खोजते यहां चली आयी और यहीं की होकर रह गयीं. यहां भी ऐसी घुल मिल गयीं कि वह मीरा भी नहीं रही–मात्र मां बनकर रह गयीं अर्थात् अपना सर्वस्व ही उसके चरणों में समर्पित कर वह स्व से भी मुक्त हो गयीं. **(क्रमश:)**

व्यंग्य

हा ! हा ! श्री दुर्दशा देखी न जाई

● प्रेम जनमेजय

इस समय विश्व की दशा, महादशा और दुर्दशा का काल चल रहा है. श्री की हानि हो रही है. धर्म की हानि होती थी तो प्रभु अवतार ले ही लेते थे. श्री की हानि हो रही है पर लक्ष्मी माता अवतार नहीं ले रही हैं.

भारत में कोरोनाकाल की एक कंफ्यूज्ड सुबह. कोरोना रोगग्रस्त उद्योग बढ़ रहे थे सावधानियों की जीडीपी घट रही थी. घर में बंद लोग मॉस्क पहनकर भी डरे हुए थे और बाहर वाले बिना मॉस्क के चाट पकौड़ी चाट रहे थे. कोरोनाकाल में देशभक्त कोरोना भजन गाता था– तिंहु लोक परताप तुम्हारा, और आजकल प्रजातंत्र भक्त चुनावी भजन गा रहा है– भय बिनु होइ न प्रीति. हाथ धो धोकर थके लोग, हाथ धोकर पीछे पड़ने लगे हैं.

सुबह सुबह मेरे मोहल्ले में भजन गूंजा– मैया मोहिं दाउ बहुत खिझायो ....

वे सूरदास नही हैं पर सूरदास का भजन गा रहे थे. वे साहित्य जगत के प्रसिद्ध श्री श्री क्रांतिकारी लेखक हैं पर सूरदास का भजन गा रहे थे. क्रांतिकारी को तो सूर और तुलसी से एलर्जी होती है पर ये... मैंने ऐसे वीरों को तो देखा है जो घर में पत्नी के आग्रह पर चुपके-चुपके भजनाते हैं और सार्वजनिक रूप से नास्तिकियाते हैं, पर ये... दिल में राम राम और मुंह में कांतिकारी छुरी रखने वाले भजनाते नहीं, पर ये... भगवती प्रसाद शर्मा नामक यह जीव, दूसरों का बीपी बढ़ाने के कारण बीपी कहलाता है पर आज तो ये... इस बीपी के कारण उनका पंडित होना छिपा रहता है और क्रांतिकारिता बची रहती है, पर आज...

मेरा मोहल्ला किसी खबरिया चैनल-सा चटपटिया रहता है. इस चटपटिया मोहल्ले में हर तरह के तू-तू मैं-मैं के अखाड़े हैं. गलियों को रौशन रखने के इरादे से लगाये गये प्रजातंत्र के खोखले खंभे हैं. बच्चों के खेल से लेकर बड़ों के खेल तक के मैदान हैं. खेल खिलाने वाले भी हैं. खेल के प्रायोजक भी हैं. खेल को चटपटा बनाने वाली चीयर्स गर्ल्स और बॉयज हैं.

यहां वातानुकूलित बंद कमरों के मैदान

में शतरंज भी खेली जाती है. अचानक ब्रेकिंग न्यूज आती है. खिलाड़ी खेलते हैं, चोटिल होते हैं. लोग छतों से लाईव प्रसारण देखते हैं. शतरंज से सौ रंज का आनंद लेने वाले मसालेदार चाट के चटकारे लेते हैं. पर हमारे मोहल्ले में जेनुइन कष्ट अधिक देर टिकता नहीं है. नलों में पानी न आने का कष्ट बस एक दिन रहता है. शेष दिन न नल में पानी होता है और न नल की लाइन में पानी की चर्चा होती है. लाइन में खड़े प्यासों को अचानक ब्रेकिंग न्यूज परोसी जाती है– उस साले की लड़की भाग गयी.

कुछ नकाबधारी और कुछ बेनकाब, कुछ क्रांतिकारी और कुछ भ्रांतिकारी– अपनी अपनी चाट का ठेला लेकर मैदान में लाइव हो जाते हैं.

– साली भाग ही गयी.

– कौन साली?

– पंडित की साली.

– वो तो सुना है कि पंडित के साथ भी...

– पर भागी तो किसी साले के साथ है

– किस साले के साथ?

– धोबन के देवर के साथ...

– वो साला धोबी तो विधर्मी है.

– तभी कहूं कि मेरे कपड़े ठीक क्यों नहीं धोता...

– धोबी साले का बायकॉट होना चाहिए...

– मोहल्ले में बड़ा अधर्म फैल रहा है. आजकल की लड़कियों की जवानी को आग लगे... हर ऐरे-गैरे के साथ भाग लेती हैं. मान लिया मॉडर्न ज़माने की हो पर हो तो पंडितों के घराने की लौंडिया. तुम्हारा बाप तो मॉडर्न नहीं है...

– देश का कानून कहता है कि हर किसी को भागने का अधिकार है...

– आप देश के कानून की बात न ही करें तो अच्छा... हमारे देश का कानून तो मॉस्क लगाकर पैदा हुआ है. जैसे कर्ण कवच-कुंडल के साथ पैदा हुआ था. उसका सही चेहरा किसी ने देखा नहीं है. और जिसने मॉस्क उतारने की कोशिश की उसकी ही उतार दी गयी.

तभी एक बच्चा उस भीड़ में प्रवेश करता है और बोलता है– डैड!

इस भीड़ में सभी डैड हैं, कोई पिता या बाबूजी नहीं. सभी डैड एक महत्वपूर्ण बहस में उलझे हैं. सभी डैड खिजियाते हैं– क्या है?

– मम्मी कह रही है पीने को पानी नहीं है...

बच्चे का असली डैड चिल्लाता है– तेरी मम्मी भी बेकार में विरोधी दल सी चिल्लाती रहती है. अब खड़े हैं न नल पे... यह ले पैसे और मिनरल वॉटर ले आ...

नल है पर उसमें पानी क्वरंटीन है. आता नहीं कभी-कभी झांकता है. जैसे

देश में विरोधी दल हैं पर विरोध कभी-कभी आता है. जैसे देश में मज़दूरों और किसानों की लाखों की रैली में चिंता करने वाले हजारों हैं पर आजकल क्वरंटीन हैं.

मेरे सुनने से बेपरवाह, अपने 'मन की बात' उड़ेलने लगे. वो जब बोलते हैं तो बीच में कमशियल ब्रेक भी नहीं लेते हैं. उनकी भुक्तभोगी पत्नी को तरस आया और उसने चाय ब्रेक का प्रस्ताव रखा.

तो मेरे इस मोहल्ले में श्री श्री जी सुबह सुबह भजन गा रहे थे– मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो..... कहां वे गाने वाले से नफरत करते थे और कहां भजनिया रहे थे. कोरोना और पुलिस का डंडा जो न कराये कम है.

अभी जनवरी ही की तो बात है.

वह एक गुरु गम्भीर साहित्यिक गोष्ठी का निमंत्रण था और उसमें भाग लेने के लिए मैं लगभग भागा-सा चला जा रहा था. मेरे भागने का कारण गोष्ठी की गुरुता का आतंक नहीं अपितु कहीं भी समय से पहुंचने की प्राध्यापकीय मानसिकता का सुफल था. ज्ञानीजन मास्टरी मानसिकता के उत्पादन को कुफल ही मानते हैं, यही कारण है कि प्राध्यापकीय समीक्षा को एक गाली की तरह संत समाज में माना जाता है. कॉलेज में पीरियड में बंटा दिन आपको ऐसा मशीनी बना देता है कि समय पर जब घंटी नहीं बजती है तो मस्तिष्क में घंटी बजने लगती है और निगाहें कभी दीवार-घड़ी और कभी कलाई की घड़ी पर फिसलती बेचैन करती रहती हैं कि समय तो हो गया पर घंटी क्यों नहीं बजती? यह लगभग वैसा ही जैसे रेल की पटरियों के पास रहने वालों की नींद तब उचटती है जब रेलगाड़ी समय से नहीं गुजरती है, समय से गुज़र जाए तो नींद के उचटने का सवाल ही नहीं पैदा होता है. समय की ये घंटियां अवसर मिलते ही बजने लगती हैं.

हम सभी ज्ञानीजन जानते हैं कि सभी साहित्यिक कार्यक्रम भारतीय समय के अनुसार ही आरम्भ होते हैं और भारतीय समय को अनिश्चित कहा जाता है फिर भी यह घंटी मुझ जैसे को दौड़ाये लिये जाती है. गोष्ठी का समय पांच बजे का था और मेरी घड़ी में पांच बजकर दस मिनट हो चुके थे और अभी दस मिनट का समय और लगने वाला था पहुंचने में. मुझे सड़क किनारे आराम से चलने वालों से ईर्ष्या हो रही थी. ऐसी ही ईर्ष्या मुझे अपने से लगभग पंद्रह कदम आगे हस्त-मस्त चाल से चल रहे सज्जन को देखकर भी उपजी. पास पहुंचा तो पाया, बेतरतीब दाढ़ी एवं गरीब झोले से युक्त गुरु गम्भीर साहित्यकार मेरे मोहल्ले के श्री श्री जी थे. उन्हें मैंने आज तक मुस्कराते नहीं देखा था. मुझे देख उनका सरल चेहरा सख्त हो

गया और उसपर गुरु गम्भीरता छा गयी. पर उस गम्भीरता में कहीं यह अहसास भी था कि उनकी मस्त चाल की चोरी पकड़ी गयी है. आजकल सच्चा संत वही होता है जो आवश्यकता पड़ने पर सांसारिक राग-विराग से ऊपर उठ जाता है और अपने विरुद्ध उठे स्वर को तिनके के समान देखता है तथा उसे तिनका सिद्ध करने के लिए गुरु गम्भीर प्रश्न उठा देता है. श्री श्री जी भी ऐसे ही साहित्यिक संत हैं अत: उन्होंने गुरु गम्भीर प्रश्न हवा में उछाला– 'हुं... आप भी बढ़ते हुए उपभोक्तावद और फासिज़्म के विरुद्ध एकजुट होने के लिए गोष्ठी में चल रहे हैं न. जानते हैं यह आज का बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल है.'

मेरे हां कहने पर उन्होंने इस सवाल पर अपने गुरु गम्भीर चिंतन को मुझ अकिंचन पर ऐसा लादा कि पता ही नहीं चला कि रास्ता कब तय हो गया और उन्होंने जो वैचारिक खुराक पिलायी उससे लगा कि गोष्ठी तो हो गयी.

गोष्ठी स्थल पर पहुंचे तो पाया कि आयोजक ही उपस्थित हैं और फिनिशिंग टच दे रहे हैं. मेरे साथ आये गुरु गम्भीर साहित्यकार को आयोजकों ने तेरा तुझको अर्पण की शैली में अर्पित कर दिया. अर्पित हुए गुरु गम्भीर स्वास्थ्य के मामले में ऐसे गुरु थे कि पल भर भी खड़े होने पर उनके शरीर का गुरुत्वाकर्षण बिगड़ने लगता था. अत: उन्हें खाली-खाली कुर्सियां हैं वाले हॉल में ले जाने का दायित्व मुझे दिया गया. हॉल में हैलो हैलो माइक टेस्टिंग का स्वर गूंज रहा था. माइक टेस्टिंग के बाद खाली हॉल को स्वर से भरने के लिए उस 'आम आदमी' ने अपने पसंदीदा फिल्मी गानों की कैसेट लगा दी. गुरु गम्भीर जी एक गम्भीर विषय पर मुझे ज्ञान दे रहे थे. फिल्मी संगीत ने उनकी तपस्या को भंग कर दिया और उन्होंने आम आदमी को सही दिशा देते हुए चिल्लाकर कहा– ये कौन है जिसने वाहियात फिल्मी गाने लगा दिये हैं, बंद करो इसे.' सहमे-से आम आदमी ने आदेश का पालन किया, हाल में आम आदमी की चिंताओं पर होने वाले साहित्यिक कार्यक्रम में गुरु गम्भीर शांति पसर गयी.

अनेक साहित्यिक उपमाओं से युक्त उस गाने– एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा– में कहीं भी कुछ वाहियात नहीं था, हां यदि कुछ वाहियात था तो उसका फिल्मी चोला जिसे श्री श्री श्री सह नहीं पाये थे.

यही श्री श्री आज भजना रहे थे.

मन हुआ कि मैं भी गाऊं–

रो-अहू सब मिलकै आवहु लेखक भाई

हा! हा! श्री श्री दुर्दशा सुनी न जाई.'

अचानक उनका गायन थम गया.

मन ने कहा कि तू केवल सुन मत

देख भी. मैंने श्री श्री की दुर्दशा देखने के लिए उनसे घर आने की अनुमति पाने हितार्थ फोन किया. और समय होता तो बिना अनुमति के चला जाता. कोरोना समय में अनुमति आवश्यक है. पता नहीं चलता कि कौन कितना डरा बैठा है.

मैंने उनके घर फोन किया. उनके कारण उनका परिवार लैंडलाइन युग में जीने को विवश है. मोबाइल है पर मोबाइल से नफरत करते हैं. फोन उनकी पत्नी ने उठाया. मैंने आने की अनुमति मांगी तो उनकी पत्नी बोली– आ जाओ, बहुत दिनों से याद कर रहे थे. अकेले बैठे-बैठे अवसाद में आ गये हैं. बहुत बार बोला कि अब तो लोग बाग बाहर जाने लगे हैं, आप भी थोड़ा टहल आओ, पर नहीं. वैसे तो प्रधानमंत्री को गाली देते थकते नहीं हैं पर उनकी बात को मानकर अब तक लक्ष्मण रेखा खींचे बैठे हैं. डरते हैं कि लक्ष्मण रेखा लांघी तो कोरोना गिरेबान पकड़ लेगा. बोलास छूटती है तो लैक्चर पिलायें किसे? ...हमारे तो कान पक चुके हैं. एक दिन तो चैन मिलेगा... जल्दी आ जाओ.' मेरे मन ने घबराकर कहा कि यह कैसा निमंत्रण है जिसमें संवैधानिक चेतावनी है.

मैं गया क्योंकि मुझे जाना था. न जाता तो वे युवा पीढ़ी के मतलबीपन पर लेख लिख मारते. मुझे देखते ही श्री श्री जी खबरिया चैनल हो गये. मेरे सुनने से बेपरवाह, अपने 'मन की बात' उड़ेलने लगे. वो जब बोलते हैं तो बीच में कमर्शियल ब्रेक भी नहीं लेते हैं. उनकी भुक्तभोगी पत्नी को तरस आया और उसने चाय ब्रेक का प्रस्ताव रखा. उधर श्री श्री की विचारधारा को ब्रेक लगा और मुझसे बोले, 'और तुम सुनाओ इस बीच क्या-क्या करते रहे.'

मैंने हाई कमांड के सामने अपने हाथों को मलते हुए कहा– कुछ खास नहीं... बस... एक जिज्ञासा है... बस.

श्री श्री फिर लेक्चरी मुद्रा में आ गये और बोले– कहो, आज हम तुम्हारी समस्त समस्याओं का समाधान करेंगे. दोपहर का भोजन तुम यहीं करना.'

मैं समझ गया कि वे मुझे भोजन के चक्कर में कैदी बनाना चाह रहे हैं. मैंने कहा– भोजन पर तो मेरे चाचा आ रहे हैं... उनके साथ होगा... पर यह बतायें कि आप सुबह सुबह सूरदास का भजन क्यों गा रहे थे? आप तो...

बहुत बार बोला कि अब तो लोग बाग बाहर जाने लगे हैं, आप भी थोड़ा टहल आओ, पर नहीं. वैसे तो प्रधानमंत्री को गाली देते थकते नहीं हैं पर उनकी बात को मानकर अब तक लक्ष्मण रेखा खींचे बैठे हैं.

सब इसके कारण... ये जो धर्म की अफीम खाये हमारी अर्द्धांगिनी हैं न...इसके कारण...

हमने पिछले दिनों इसे इतना ज्ञान दिया– कार्ल मॉक्स, लू शुन, गोर्की... क्या-क्या नहीं.. तुम तो जानते ही हो कि हमें लोग बुलाते हैं तो कितना खर्चा करते हैं और हमने इसे सब मुफ्त दिया. पर आज सुबह अड़ गयीं कि हमें कोई भजन सुनाओ तब हम तुम्हारी सुनेंगे. अब कोई सुबह-सुबह हमारी सुने न तो हमें कब्जी हो जाती है. हम किसी से फोन पर बात करते हैं तो अब लोग उठाते नहीं. सबके पास मोबाइल है जिसमें हमारा नम्बर आ जाता है. मरते क्या न करते सूरदास का भजन सुना दिया. पता होता कि तुम आ रहे हो तो... वैसे हमने एक चालाकी खेली... हम भी श्री श्री हैं. हमने ईश्वर के लिए भजन थेड़े ही गया, हमने तो आलोचकवा के लिए गाया...

– आलोचकवा के लिए.

– और क्या... तुम तो जानते ही हो कि आलोचक लुच्च धातु से बनता है. लुच्च माने लुच्चा. हमारे साथ भी लुच्चई करते रहते हैं. तो साहित्य मैया से जा हम यह कह रहे हैं कि मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो.... यहां दाउ नामवर आलोचक हैं... समझे.

– यह तो इस भजन की बढ़िया व्याख्या हुई.

– और सुनो! जानते हो कि हर मां को अपनी संतान सर्वाधिक प्रिय होती है. उसकी बहती नाक, चीकट भरे कपड़ों आदि से चाहे आपको बदबू आये पर मां तो उसे छाती से चिपकाये रहती है. अपनी संतान की तुलना में दूसरे का सुंदर बच्चा कमतर ही होता है. इतिहास में मांएं अनेक प्रकार की हुई हैं. गांधारी, कुंती, कैकेयी, दिति-अदिति आदि अनेक माताओं के बारे में तुम जानते ही हो. बहुत कम होती हैं जो अपने बच्चे की बेहतरी के लिए दूसरे की बेहतर संतान को स्वीकार करती हैं और उसके समान बनने के लिए कहती हैं. हर रचनाकार के लिए उसकी रचना भी एक संतान की तरह होती है. कभी पूछकर देखो किसी बड़े से बड़े साहित्यकार से कि उसे अपनी कौन-सी रचना सर्वश्रेष्ठ लगती है. झट वो मां बन जाएगा और कहेगा कि हर मां को अपनी हर संतान अच्छी लगती है. हर छोटे से बड़ा लेखक मां ही होता है यह दीगर बात है कि वह कैसी मां होता है.और सुनो...'

इससे पहले वह और कुछ सुनाते, घर से मेरी पत्नी का फोन आ गया. जैसे गुंडों के अड्डे पर अकेला पुलिस वाला जाने से पूर्व कहता है कि मैं एक घंटे में नहीं आया तो वहां छापा मार देना, मैं भी पत्नी को कह आया था कि यदि मैं दो घंटे तक नही आया तो... श्री श्री की कितनी श्री बची, नहीं जानता पर मैं श्रीहीन होने से बच गया. जैसे पुलिस स्टेशन से, न्यायालय से, सरकारी दफ़्तर से आप बचकर आते हैं. ❑

कहानी

वह आया था

● कुसुम अंसल

उस समय आकाश गहरा नीला था, हवा बर्फीली और चीड़ के पत्तों की कमज़ोर महक से रुंधी हुई थी. हिमाच्छादित उस ऊंचे शिखर पर जहां तक दृष्टि जाती थी बस एक सफेद बर्फ की परत के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था, न कोई पेड़ न कोई हरी-भरी झाड़ी-कुछ भी नहीं. हां कहीं-कहीं कोई गठील, पथराई-सी चट्टान बर्फ की चादर के बाहर सिर उठा अवश्य दिख जाती थी. उस दिन तो सूरज भी जैसे वहां आने से कतरा रहा था. तभी तो एक धुंध भरा मद्धम प्रकाश जैसे-तैसे उस स्थान को रोशन करने में जुटा था. उस वातावरण से बेखबर बर्फ के एक टीले पर वह आलथी-पालथी मारकर बैठा हुआ था. उसके हाथ में लकड़ी का एक नुकीला-सा टुकड़ा था. वह टुकड़ा उस कार्य के लिए पर्याप्त नहीं था फिर भी वह जी जान से अपनी खुदाई में व्यस्त था. उस तेज़ हवा की ठिठुरन, गहरी ठंड, रुई की नर्म फुनगियों से गिरती बर्फ सभी से अनछुआ वह, अकेला ही तत्परता से अपनी खोज में तल्लीन-परिश्रमरत था. कभी-कभी उस लकड़ी के प्रहार की कमज़ोर-सी ध्वनि, वहां की थमी हुई हवाओं में छपछपाने लगती थी, ऐसे जैसे कोई उथले पानी में पैर रखता चला जा रहा हो.

'अरे... कौन हो तुम... क्या कर रहे हो यहां...?'

जाने कहां से सन्नाटे को तोड़ती एक आवाज़ हवाओं में तैरती उसके पास आकर ठहर गयी.

उसने सिर उठाया, तो चेहरे पर एक पथराया-सा भाव था, वैसा जैसा तपस्या भंग होने पर किसी समाधिस्थ संन्यासी का होता है...निर्विकार, शुष्क और शून्यत्व में धुला हुआ.

'मैं...अपनी सेना का एक जवान...'

'क्या कर रहे हो यहां, इतनी ऊंचाई पर, इतनी गहराई बर्फ में...अकेले?'

'तुम...तुम कौन हो यहां कैसे पहुंच गये?'

'मैं, मैं पहाड़ के उस दूसरे किनारे की तरफ से आया हूं... वहां से जहां लोहे की कंटीली बाढ़ सिर ताने खड़ी है...'

वह भी तो सिर ताने खड़ा था, पहले ने देखा, उसकी सेनानी वर्दी भी जगह-जगह से फटी हुई थी और जिस पर कहीं-कहीं खून के चकत्ते सूखकर काले पड़ चुके थे. चेहरा भी कैसा, जैसे राख मली गयी हो, सलेटी, जिस पर पथराई-सी आंखें थीं परंतु उन आंखों में जुगनू-सा एक जलता-बुझता स्थायी भाव थमा-सा रह गया था...क्यों...पता नहीं क्यूं?

आगंतुक ने भी पहले जवान को ध्यान से देखा, उसका कोट भी ढेर सारे सुराखों से भरा था, कुछ वैसे सुराख जो गोलियों के आर-पार हो जाने से बन जाते हैं. उसका चेहरा भी तो जीवंत नहीं लग रहा था, उस पर भी जैसे किसी ने कूची से गहरा पीला रंग पोत दिया था, जो बड़ा असंगत-था. परंतु उसकी आंखों में भी एक न बुझने वाली चमक थी, जो उसके सारे अस्तित्व को एक रहस्यात्मक गर्माहट से भर रही थी.

पहले वाला मुड़कर फिर से अपनी खुदाई में लग गया. 'खच्च-खच्च' उसकी लकड़ी का बेकार किनारा अपनी नाकाम कोशिश में कार्यरत था. दूसरे वाले ने एक किनारे पर बर्फ के लम्बोतर टीले के पास बैठकर हाथों से थपथपाकर कुछ टटोला और फिर वहीं एक किनारे पर सिर झुकाकर बैठ गया. उसके हाथ में लोहे का एक कीला-सा था, जो खुदाई के काम आ सकता था, पहले वाले की तरह वह भी उस बर्फ की पर्त तले कुछ पाने की तलाश में खुदाई करने लगा. कुछ समय उन दोनों का खोदा-खादी में बीत गया, एक-दूसरे से बेखबर अपने-अपने अनुसंधान में व्यस्त रहे, फिर अचानक ही वे दोनों एक साथ उठे और एकाएक आमने-सामने खड़े हो गये.

'तुम क्या तलाश कर रहे हो यहां?' दूसरे ने पूछा.

'मेरा कुछ है यहां, जो दबा रह गया है.' दूसरे ने फिर पूछा.

'जानते तो होगे तुम, यह कारगिल का वही पहाड़ी इलाका है जहां कुछ महीने पहले लड़ाई हुई थी.'

'हां, जानता हूं, मैं भी तो शामिल था उसमें.'

'अच्छा तो तुम भी क्या मेरी तरह शहीद...?'

'चलो अपना काम खत्म कर लें, वापस लौटना है मुझे, किसी की नेकनामी का सवाल है.' दूसरा उसकी बात काटकर मुड़ गया था.

'अगर तुम्हारा काम खत्म हो जाए तो अपनी लोहे की कुदाली मुझे दोगे? मेरी लकड़ी तो काफी बेकार हो चुकी है...'

'ठीक है.' दूसरा वाला मुड़कर फिर से अपने काम में व्यस्त हो गया.

कुछ समय और निकल गया, पहले वाले की लकड़ी तब तक टूटकर दो टुकड़े हो चुकी थी, परंतु उसकी खोज थी जो

अभी तक पूरी गहराई में नहीं उतर पायी थी. वह उठकर खड़ा हुआ और लड़खड़ाते कदमों से चलता दूसरे के पास पहुंचा तो भौंचक्का रह गया. दूसरे वाले ने बर्फ से तराश कर जिसे निकाला था वह एक मृत सैनिक का जिस्म था, दूसरा आश्चर्य यह था कि उसका चेहरा, कद, सभी कुछ हूबहू वैसा ही था जैसा वह खुद था. वैसे ही फटे तार-तार कपड़े, चेहरा राख-राख जिस पर वैसी ही मेल खाती मुर्दनी छाई हुई थी.

'कौन है ये तुम्हारा, जुड़वां भाई?' कितनी समानता है इसकी तुम्हारे साथ और कपड़े भी तो...?

दूसरा कुछ नहीं बोला, उसने मुड़कर अपनी लोहे की कुदाली उसे पकड़ा दी.

'यही चाहिए था ना तुम्हें...लो अपना काम खत्म कर डालो.' उसकी आंखों के जुगनू तब भी चमचम कर रहे थे...कुछ पूछने की गुंजाइश नहीं थी.

'हां' पहले वाला कुदाल उठाकर अपने छोड़े हुए स्थान पर चला गया, इस बार खुदाई आसानी से मुकम्मल हो गयी और वह जल्दी ही अपनी वांछित वस्तु पाने में सफल हो गया. उसने बर्फ की परत से खींचकर एक दोनाली बंदूक को बाहर निकाल लिया और जेब से रूमाल निकालकर बड़े प्यार से पोंछ रहा था. दूसरा जवान तब तक उसके बहुत निकट आ खड़ा हुआ, जाने कब से खड़ा था, ताज्जुब न तो उसे उसकी सांसों की गर्माहट से हुई थी, न ही उसकी परछाईं ने उसे छुआ था. वैसे ही सूरज का ढलना, उसका प्रकाश होना, न होना उन दोनों के लिए अर्थवान था ही नहीं.

'कब से खड़े हो तुम?' पहले ने अपनी बंदूक उठायी और पहाड़ की ढलान की तरफ चलने लगा.

'बस अभी ही तो आया था.' दूसरे ने भी उसके साथ कदम मिलाये और वे दोनों पहाड़ के ढलान पर साथ-साथ उतरने लगे. पहले ने देखा, दूसरे के गले में एक लम्बी सुनहरी चेन थी, जिस पर स्वर्णिम अक्षरों में 'ओम' लिखा हुआ था और जो चमक भी रहा था.

'तुम्हें हासिल हो गया, जो तुम्हें चाहिए था?'

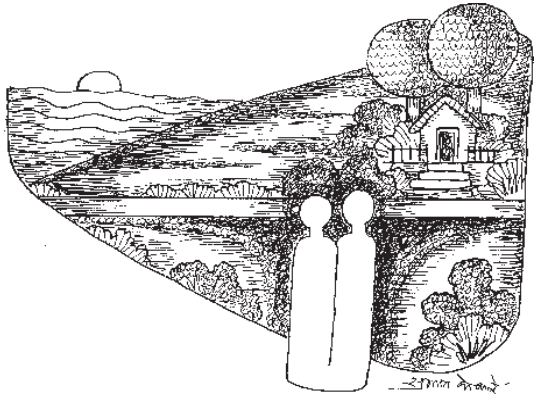

'हां.'

'और तुम्हें?'

'मुझे भी...' उसने अपनी गले में पड़ी चेन को बड़े स्नेह से छुआ और 'ओम' की उंगलियों से उठाकर आंखों से छुआया...

'ओम' पर विश्वास है तुम्हारा?

'मैं नहीं जानता क्योंकि मैं हिंदू नहीं हूं.'

'क्या...' वह लड़खड़ाया, पैरों में कुछ फंस-सा गया था.

'संभलकर' दूसरे ने उसे बांहों में थाम लिया... 'पैर बचाकर चलो, पता नहीं मेरे जैसे कितने जवान यहां अभी भी दफन हैं.'

'नहीं भाई, लड़ाई में शहीद हुए सभी जवान तिरंगे में लपेटकर ताबूतों में ले जाए जा चुके हैं ताकि उन्हें अपनी वीरता के लिए 'परमवीर चक्र' आदि से सम्मानित किया जा सके.'

'झूठ कह रहे हो तुम, मैं तो तब से यहीं हूं... तुमने देखा तो था मुझे...मेरे मुल्क के लोग कहां ले गये हमें. इतनी मारकाट के बाद कौन-सा इंकलाब आया? किसके हालात बदले- तुम्हारे मुल्क के या मेरे...?'

'इतनी बर्फ, ठंडे धुएं की सर्द रातों में कैसे रहते रहे तुम...इतने महीने बीत गये अब तो लड़ाई खत्म हुए?'

'चलो दिल बहलाने के लिए कोई और बात करें... मेरे कान बंदूकों की आवाज़ें सुनते-सुनते फट चुके हैं, मेरी आंखें गोला बारूद के धुएं से अंधी हो चुकी हैं, जिस्म भी छलनी-छलनी हो चुका है...पर दिल में एक ख्वाब की मासूमियत अभी तक रुखसत नहीं हुई...बस वही ज़िंदा है...'

'संभलो...वीर जवान ठोकर नहीं खाते...' पहले ने कसकर दूसरे का हाथ पकड़ लिया...एक गहरी सर्द छुअन जो छुअन भी नहीं थी.

'हां, लड़खड़ाना कोई शहीदी फितरत नहीं है.'

'तुम्हें लगता है सैनिक सही कदम उठाते हैं?'

'उन्हें तो ऊपर से आये हुक्मरानों के ऐलान या ऑर्डर को मानना पड़ता है– अंजाम के बारे में सोचना उनका काम नहीं होता, हमारे लिए उस वक्त जंग एक जुनून होती है बस और कुछ नहीं...'

'तुम्हें नहीं लगता सारी साजिशें बाहरी होती हैं...नहीं तो क्या अंतर है मुझमें और तुममें; अपमान, भाषा भी तो कितनी एक जैसी है, फिर क्यों हैं ये लड़ाइयां, मार-काट क्यों?'

'पता नहीं, क्यों सियासत दूसरी कौमों को मुर्दा समझने लगती हैं और फिर हमारा मुल्क तो खासतौर पर एक मज़हबी मरज़ का शिकार है. इसलिए ये लड़ाइयां खत्म होती हैं, और फिर शुरू हो जाती हैं.'

'हमारे लिए इन बातों का अब क्या

फायदा...'

'हां, कोरे खयालात तो मुर्दों को ज़िंदा नहीं कर सकते– खैर तुम बताओ, तुम्हारी यह बंदूक बहुत पुरानी मालूम पड़ती है?'

'हां, मेरे दादा जी की है, उन्होंने मेरे पिता को दी थी और मेरे पिता के शहीद हो जाने पर मेरी मां ने यह बंदूक मुझे सौंप दी, लड़ाई के दौरान वहीं बर्फ में छूट गयी थी, इसे ही तो वहां से लाने गया था, उतनी ऊंचाई पर...तीन पुश्तों का शहीदी दस्तावेज़ है यह मेरी दोनाली बंदूक.' उसने बेहद प्यार से बंदूक को छाती से लगा लिया...'और तुम दोस्त कितना खस्ता हाल हो, छलनी-छलनी और मज़े से चले जा रहे हो'– पहले ने उसके हाथ को नर्मी से अपने हाथ में दबाते हुए कहा.

ख्वाब ही तो है जो इंसान को कांटेदार दीवार फलांगकर इतनी दूर ले जाता है...इतनी ऊंचाई तक पहुंचा देता है...' उसने मुड़कर पीछे खड़े पहाड़ की ओर इशारा करते हुए कहा.

'मुझे, उस गांव तक जाना है न, देखते नहीं यह सुनहरी चेन, मैं भी तो उतनी ऊंचाई पर इसे ही लेने गया था, जाने कैसे मेरे गले में पड़ी रह गयी, शायद इसलिए कि उसने अपने हाथों से पहनायी थी.' उसके व्यक्तित्व में कुछ था जो थम गया था, फिर वह मुस्कराया तो चेहरा, वैसा कुछ, जैसे पत्थरों में दरार पड़ जाती है.

अब तक वे दोनों ढलान से उतर गये थे. चीड़ और साल के वृक्ष अपनी शाखों पर पड़ी नरम बर्फ के फाहे उठाये उनके साथ-साथ चल रहे थे, थोड़ी दूर पर बस्ती के इक्का-दुक्का घर भी नज़र आने लगे थे जहां उनके रचे-बसे होने का, जीवंत होने का प्रतीक थीं मद्धम-सी टिमटिमाती बत्तियां.

'क्या हम उसके बारे में बात कर सकते हैं?' पहले ने कहा.

'हां, क्यों नहीं?' दूसरे ने हसरत से कहा, 'वह जो गांव दिख रहा है न, वहां मैं अपनी ट्रेनिंग के दौरान चला जाता था, कभी खाना या ज़रूरत की चीज़ें खरीदने, तो कभी गश्त लगाने. मैंने तो उसे नहीं देखा था, पर उसने मुझे वहां छुपते-छुपते देख लिया था. बस फिर गांव के उस कोने की एक अकेली कोठरी, मेरे छुपने और उससे मिलने की ख्वाबगाह बन गयी. वह पाक औरत थी, दोस्त, पर उसे अपना हुस्न छुपाना नहीं आता था...वह खुद मुहब्बत की खातिर मेरे सामने बेनकाब हुई थी और मैं उसके खूबसूरत जिस्म को देखकर पागल हो गया था– उसने अपने घरवालों को कुछ नहीं बताया था, लेकिन मेरा वजूद, सरहद के उस पार मेरा मुल्क, मेरा मज़हब सभी कुछ हमारे रिश्ते को कबूल नहीं कर सकता था और उसके

बाद जैसे ही लड़ाई का ऐलान हुआ मुझे भी अपनी फौज के साथ कारगिल की उन ऊंची चोटियों पर जाना पड़ा. सिपाही तो ज़ालिम दौड़ में शामिल होते ही हैं दोस्त, प्रेम, मोहब्बत उनका नसीब नहीं होती,' वह फिर ठहरकर अपनी जुगनू भरी आंखों से उस अपनी ख्वाबगाह को तलाश रहा था जो उनके प्रेम की गवाह थी.

'चलो मेरी बात छोड़ो, अब अपनी कहो, तुम कैसे पहुंच गये यहां... ?' दूसरे ने ठहरकर उसके हाथ से अपने हाथ को छुड़ाते हुए कहा.

'मैं जब छोटा था न, तब से घर की दीवारों पर अपने पुरखों की काली सफ़ेद तस्वीरें देखकर बड़ा हुआ था. मेरी मां बताती थीं कि हमारा परिवार देश के स्वतंत्रता संग्राम में बलिदान होता आया है– घर के पुरुष मेरे दादा के दादा, फिर मेरे पिता, वे सभी तो वीरगति को प्राप्त हुए, जिसकी गवाही देते घर में बहुत से इनामी सर्टिफिकेट और सम्मान-पत्र शीशे के फ्रेम में मढ़ रखे थे. पहले दादी ने मेरे पिता को, फिर मेरी मां ने मुझे अकेले ही पाल-पोसकर बड़ा किया. सारी उम्र तकलीफों और धनाभाव को सहकर भी वह मुझे देश के प्रति समर्पित होने का, बहादुरी का पाठ पढ़ाती रही. बस विरासत के रूप में बुजुर्गों की वीरता की दास्तानें और वह बंदूक मुझे सौंप दी थी मेरी मां ने, और अब जब कारगिल के इस युद्ध में इसे लेकर उतरा तो मेरे वीरगति पा जाने के बाद यह यहीं पड़ी रह गयी. मेरे शरीर को तो उठा ले गये युद्ध से बचे हुए लोग अपने कौमी झंडे में लपेटकर, ताकि मेरी मां मेरी मृत्यु पर गर्व कर सके.'

'तो यह बंदूक इसीलिए लिये जा रहे हो कि तुम्हारा बेटा तुम्हारे बाद इसे कंधे पर उठाएगा...' दूसरे ने हमदर्दी से कहा.

'मेरी तो अभी तक शादी भी नहीं हुई.'

'हो जाएगी, इंशाअल्लाह, बेटा भी होगा...एक क्यों...तुम दो या चार पैदा करना...'

'पहले वाला हंसा...तो, चेहरे के पीलेपन में कुछ और गहराया, गहरी शून्यता तक जाता एक टूटता-सा भाव.'

'हौसला मत छोड़ो दोस्त...ख्वाब को मुकम्मल करना बड़ा ज़रूरी होता है...ख्वाब ही तो है जो इंसान को कांटेदार दीवार फलांगकर इतनी दूर ले जाता है...इतनी ऊंचाई तक पहुंचा देता है...' उसने मुड़कर पीछे खड़े पहाड़ की ओर इशारा करते हुए कहा.

'जब आदमी मर जाता है तो...तो सपने भी तो मर जाते हैं दोस्त.'

'हां...मैं तो भूल ही गया था, कि हम दोनों ही ज़िंदा नहीं हैं...सॉरी दोस्त.' वह दोनों एक-दूसरे के गले लग गये और फिर से हाथ पकड़कर चलने लगे.

तब तक वे दोनों बस्ती के निकट

पहुंच गये थे. 'दूसरा', बस्ती के किनारे वाली छोटी-सी कोठरी की तरफ बड़ी फुर्ती से कदम बढ़ा रहा था, पहले वाला भी अपनी बंदूक उठाये, उसके पीछे-पीछे चला जा रहा था.

कोठरी की खिड़की खुली थी, और उसमें से एक औरत के चीखने-चिल्लाने की दर्दीली आवाज़ आ रही थी. शायद वह प्रसव-वेदना से कराह रही थी. उन दोनों ने खिड़की से झांककर देखा, कमरे में दो औरतें और थीं जो लालटेन की मद्धम रोशनी में भी काफी क्रूर लग रही थीं, उन्होंने झम्मकझोर फिरन पहन रक्खे थे. उनके चेहरे पर झुर्रियों के अलावा मांग का सिंदूर और माथे की बिंदी जीवंत थी. बस वह घर-परिवार जिस धर्म को मानता था, वह जताने के लिए उस कोठरी का वह परिवेश पर्याप्त था. आले में जलता हुआ दीया. दीवार पर पुराना सीता और राम-लक्ष्मण का कैलेंडर फड़फड़ा रहा था. तभी चंद्रमा की रोशनी ने खिड़की से उतरकर कराहती नवयौवना को नरमाई से छुआ और कोठरी के कच्चे फर्श पर बड़ी कोमलता से फैल गयी...कांगड़ी के बुझते कोयले भी एकाएक चमक उठे...और बच्चे के रोने की आवाज़ कोठरी में गूंजने लगी.

'क्या कोई ऐसी तजवीज़, कानून नहीं है जो हमें इन हुक्मरानों से निजात दिला सके, दुश्मनी का, लड़ाइयों से बाहर निकल आने का रास्ता समझा सके. और मैं उसे उठाकर अपने मुल्क ले जा सकूं.'

'शायद तुम भूल गये दोस्त तुम और मैं उस तजवीज़ और कानून की गिरफ्त से बाहर हैं.'

'ओह हां, मैं तो भूल ही गया था...उसके चेहरे को देखकर हमेशा की तरह सब कुछ भूल गया था... फिर... वह देखो... मेरा बेटा... मेरा चांद-सा बेटा, काश मैं उसे गोदी में उठा सकता...!'

कोठरी में मोटी औरत जंग लगी कैंची से बच्चे की नाल काट रही थी...

'ठहरो...दाई मां, कैंची तो साफ़ लेकर आतीं, बच्चे को कोई बीमारी लग गयी तो, कितनी पुरानी और जंग खाई है तुम्हारी कैंची.'

'कहां से लाती साफ़ कैंची, गांव का सारा लोहा तो तोपें बंदूकें बनाने के काम आ चुका है... और फिर यह हराम की औलाद, ब्राह्मण की बेटी मुसलमान आतंकवादी का बच्चा...क्या करेगी इसे जिलाकर, होती है तो होने दो बीमारी.' वह क्रूरता से बोली.

'चोप्प...' मां ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया, 'नाम मत ले उसका, जाने कहां से आया था, हमारे मुंह पर कालिख पोत गया नारामुद...'

जैसे ही घर की धड़कन सामान्य हुई 'दूसरा' चुपचाप भीतर गया...अपनी सोने की चेन बच्चे के गले में पहनायी...आंखें

मूंदे पड़ी उस नवयौवना के माथे पर बड़ी हसरत से हाथ फेरा, तो साहस करके 'पहले' वाला भी उसके पीछे-पीछे भीतर गया...और अपनी बंदूक बच्चे के कुलबुलाते शरीर के पास धरती पर टिका दी– और एक फौजी सलामी के बाद वह दोनों कोठरी के बाहर निकल आये.

'मां... मां... देखो वह आया था...' नवयौवना ने जैसे कुछ महसूस किया था.

'चोप्प' मां ने हाथ का काम छोड़कर फिर से डांटा उसे.

'नहीं देखो मां...यह सोने की चेन...मैंने ही तो उसके गले में डाली थी... वह आया था अपने बेटे को चेन पहना गया है... मैं जानती थी वह आयेगा...वायदा था उसका.'

'पगला गयी है, अखबार में मरने वालों की सूची में पढ़ा था मैंने उसका नाम.'

'झूठ कहती हो मां, उस मुल्क का अखबार हमारे यहां तो पहुंचता ही नहीं.'

'तू चुप नहीं रहेगी, मैं बाहर देखती हूं कौन आया था यहां, आया था तो मुझे पता क्यों नहीं चला?' इस बार मां हैरान भी थी, सोने की चेन बच्चे के गले में चमक रही थी... और पास में रखी थी एक दोनाली बंदूक भी. मां के थके श्रमसाध्य चेहरे पर परेशानी और सामंजस्य का पसीना बह रहा था. उसने कांपते हाथों से कोठरी का दरवाज़ा खोला. बाहर रात गहरा गयी थी. आस-पास के घरों और पेड़ों पर अंधेरा एक गहरी दमसाध चुप्पी लिये अपनी रहस्यात्मकता छुपाये पसर रहा था. जंगल सूने और पंछीविहीन थे. अपने को बेसहारा और बेचैन महसूस करते हुए वे सारे के सारे पंछी जाने कहां उड़ गये थे, कंटीले तारों की बाड़ के इस पार या उस पार, पता नहीं.

हैरान परेशान मां ने अपनी मिचमिचाती आंखों से उसे ढूंढ़ने की कोशिश की पर आहट नहीं थी. अचानक उसने देखा कोठरी की दीवार से सटी हुई आदमकद राख की उस ढेरी को जो चेहराविहीन, फिर भी कुछ संप्रेषित करती हुई एक आकार विशेष में सिमटी हुई थी और उसके आस-पास एक बेहद दुर्बल-सा जुगनू जैसा जलता-बुझता प्रकाश जीवंत था...नवयौवना भी लड़खड़ाते कदमों से बाहर आ गयी थी... 'वह आया था न मां? मैं जानती थी वह अपना वायदा निभायेगा.' बेहोश होती बेटी को संभालती मां, देख रही थी कि राख का ढेर तेज़ हवा में विलीन होता जा रहा था. खुशबूदार वह राख उनके चेहरे को छूकर उड़े जा रही थी परंतु हां, खाली दीवार पर अब भी कुछ था, जो वहां थमा रह गया था. एक अनुभवगम्य, सच्चा अनछुआ एहसास... प्रेम या प्रकाश... जिसका कोई धर्म नहीं होता और जिसे कांटेदार तारों की कोई बाड़ या जीवन, मृत्यु का कोई नियम अवरुद्ध नहीं कर पाता. ❑

साहित्य का सांस्कृतिक विवेक

● सूर्यकांत नागर

साहित्य का काम समाज की बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना जागृत करना है. विचार करने वाला मानस तैयार करना. जनता को उद्‌बुद्ध करना. लोकतांत्रिक और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था जगाना. संस्कृति के माने भी सुधारना, परिमार्जित करना, परिष्कृत करना, संवारना है. संस्कारवान बनाना. यदि साहित्य सांस्कृतिक चेतना की बात करता है तो प्रकारांतर से वह सुधार, परिमार्जन की बात ही कर रहा होता है. साहित्य की तरह सांस्कृतिक विवेक में भी लोकहित का भाव है. यदि साहित्य समाज का आईना है तो संस्कृति भी समाज का दर्पण है. संस्कृति की ऊंच-नीच से राष्ट्र और समाज की तस्वीर का आभास होता है, क्योंकि संस्कृति में हमारी सभ्यता, साहित्य, इतिहास, कला, काल, दर्शन, धर्म, संस्कार, आस्था, परम्परा, आचार-विचार, रीति-रिवाज, जीवन-मूल्य सब शामिल हैं. यह युगों से संचित की गयी निधि है. समय, स्थानीयता, भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार संस्कृति अपना अर्थ ग्रहण करती है. स्मरणीय है कि संस्कृति का सम्बंध समाज से है. अकेले एक व्यक्ति की न कोई सभ्यता होती है, न संस्कृति. जब लोग समूह में होते हैं तो उनकी आस्था, परम्परा और जीवन-शैली जन्म लेती है और विकसित होती है. समाज को अलग

रखकर संस्कृति की बात नहीं की जा सकती. किसी एकांतवासी या कंदरावासी के संदर्भ में संस्कृति का प्रश्न अप्रांसगिक है. संस्कृति मनुष्य की विभिन्न साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है. उसका सीधा सम्बंध जीवन से है. संस्कृति की परीक्षा का सही स्थल भी जीवन ही है. इसलिए यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि जीवन की शर्तों पर साहित्य रचा जाए या साहित्य की शर्तों पर जीवन जिया जाये.

साहित्यकार हो या संस्कृतिवादी, उसे संस्कृति की गत्यात्मकता को ध्यान में रखना चाहिए. कुछ लोग इस गत्यात्मकता को समझे बगैर सुदूर अतीत और उसके मूल्यों से चिपके रहना चाहते हैं. वर्तमान और भविष्य की हर समस्या का हल वे परम्पराओं, इतिहास और धर्मग्रंथों में तलाशने की कोशिश करते हैं. लेकिन अतीत और वर्तमान तथा परम्परा और प्रगति के अंतरसम्बंधों को जाने बिना बेहतर भविष्य की कल्पना नहीं की जा सकती. संस्कृतिवादियों का एक दोष यह भी है कि वे संस्कृति को सदैव आदर्शवादी रूप में देखते हैं यह भूलकर कि शायद ही किसी देश की ऐसी संस्कृति हो जो पूर्णतया निर्दोष हो. संस्कृतियों के विरुद्ध प्रतिसंस्कृतियां उभरती रही हैं. संस्कृति मुट्ठी में बंद रखने की चीज़ नहीं है. प्रज्ञावान रचनाकार श्रेष्ठ परम्पराओं के संरक्षण-संवर्धन की चिंता के साथ-साथ उनमें आ रही विकृतियों के प्रति भी सजग रहता है– चाहे वह सड़ी-गली रूढ़ियों के बहिष्कार की बात हो, बाज़ारवाद के कारण पनप रही अपसंस्कृति हो या नैतिक और मानवीय मूल्यों के ह्रास की बात हो. स्वस्थ परम्पराओं का ग्रहण साहित्य के विकास के लिए ज़रूरी है. आज अर्थ-लाभ और यौन-लिप्सा ने समाज को आक्रांत कर रखा है. मनुष्य आत्म-केंद्रित होता जा रहा है. राजनीति ही जैसे हमारी संस्कृति बन गयी है. राजनीति और संस्कृति के बीच संवाद की स्थिति रही ही नहीं. आज सत्ता की राजनीति में जो खेल चल रहा है, किसी से छिपा नहीं है. आदर्श, अनुशासन और सिद्धांत सब ताक पर रख दिये गये हैं. लगता है यह राजनीति राम की नहीं, रावण की है. बुद्धिजीवियों ने इस छल-छद्म को भी चिह्नित किया है कि धर्म, संस्कृति, परम्परा की आड़ में या कहें इनका मुलम्मा चढ़ाकर अन्याय, अत्याचार, शोषण, पाखंड, उत्पीड़न और स्वार्थ सिद्धि को छिपाने की कोशिश की जाती रही है.

आज हमारा आचरण, कर्म और व्यवहार न उत्कृष्ट है, न मानवीय और न ही उत्थानवादी. हमारे आदि ग्रंथ वेदों में संस्कारित जीवन के बारे में अनेक दिशा-निर्देश हैं. वैदिक शिक्षा के मूल में है– 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या जो मुक्ति प्रदान करे. जीवन-मरण से ही नहीं,

जड़ता और संकीर्णता से. जड़ता और संकीर्णता प्रगति के अवरोधक तत्व हैं.

राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के विस्तार में साहित्यकारों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है. साहित्यकार ही है जो सिखाता है कि जीवन रूपी सागर में मथकर ज्ञान रूपी अमृत पाया जा सकता है. समुद्र मंथन का सही भावार्थ भी साहित्यकारों ने ही बताया है कि मदरांचल से आशय मन को स्थिर करने से, वासुकि नाग का प्रेम की डोर से, समुद्र मंथन का जीवन के मंथन से, विष का जीवन के दुर्गुणों से है. प्रेम, सद्गुण, भक्ति और ज्ञान अमृत है. ज्ञान है तो अमृत स्वत: ही प्राप्त है. वही समाज में कुंडली मार कर बैठे राहू को पहचानता है और उसके छल को उजागर करता है. संस्कृति के विविध आयामों पर चिंतनपरक और सृजनात्मक लेखन करने वालों की फेहरिस्त लम्बी है. यथा पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, रवींद्रनाथ ठाकुर, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, डॉ. रामविलास शर्मा, विद्यानिवास मिश्र, नरेश मेहता, रामधारी सिंह दिनकर, वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतेंदु, प्रसाद, कबीर, तुलसी आदि. इनमें अनेक ने अतीत को नवीनता से जोड़कर भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों को उकेरा है. प्रेमचंद ने तो लिखा है कि संस्कृतिवादी होने का यह अर्थ नहीं कि वह उदार या प्रगतिशील नहीं हो सकता.

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रकांड पंडित थे. उन्हें वेद, पुराण, बौद्ध-दर्शन, पुरातत्व और ज्योतिष का गहन ज्ञान था. उनके साहित्य में आध्यात्मिकता का पुट है जो शांतिनिकेतन में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के सानिध्य का परिणाम है. उनके निबंधों में आत्मीयता और सांस्कृतिक सुगंध है. 'अशोक के फूल' निबंध-संग्रह में उनका प्रकृति-प्रेम झलकता है. 'गिरीश के फूल' में आचार्यजी मनुष्य की जिजीविषा को रेखांकित करते हुए उसे विपरीत परिस्थितियों में संघर्षरत रहने की प्रेरणा देते हैं. साहित्य की भूमिका और साहित्यकार के दायित्व को लेकर द्विवेदीजी ने अनेक लेख लिखे यथा– साहित्यकारों का दायित्व, मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है, आलोचना का स्वतंत्र मान, संस्कृति और साहित्य. उनके अनुसार साहित्य का मुख्य लक्ष्य मनुष्य है. वे कहते हैं– यदि मनुष्य में विवेक जाग्रत नहीं हुआ और समता, उदारता, संवेदनशीलता और

यह दरिंदों का समाज है जिससे लड़ने के लिए हथियार उठाना लाज़मी है. विदेशी पूंजी की उदारवादी नीति एक बार शहरी लोगों को रास आ सकती है, पर ग्रामीणजन के लिए वहां कोई स्थान नहीं है.

आत्म-सम्मान के भाव का विकास नहीं हुआ तो वह मनुष्य पशु के समान है.

सांस्कृतिक नवजागरण के पुरोधा डॉ. रामविलास शर्मा मूलत: मार्क्सवादी आलोचक थे, पर जीवन के आखिरी कई दशकों से वे भारत के इतिहास, भाषा और संस्कृति के गम्भीर भाष्यकार हो गये थे. अपने विशाल साहित्य के लगभग आधे ग्रंथ उन्होंने इन्हीं विषयों पर लिखे. अंत:करण में जनवादी सोच के बावजूद, अपने साहित्यिक-सांस्कृतिक कृतित्व में उन्होंने इस विचारधारा को हावी नहीं होने दिया. तभी वे 'संस्कृति का नया इतिहास' जैसा बड़ा काम कर सके.

प्रेमचंद ने वक्त के दर्द को समझा था. उनका सारा राजनीतिक और सामाजिक दर्शन जनता के दुख-दर्द से जुड़ा था. गांधी के आदर्शों का भी उन पर प्रभाव था. अछूतोद्धार, नारी-शिक्षा, ग्राम सुधार, किसान, मज़दूर और दलितों के लिए शोषण-मुक्त समाज, विधवा-विवाह, अंधविश्वास और साम्प्रदायिक सौहार्द उनके कृतित्व के विषय बने. मंदिर-मजिस्द कहानी में दर्शाया गया कि धर्मांध होकर लोग किस तरह हिंसा पर उतारू हो जाते हैं. 'साम्प्रदायिकता और संस्कृति' लेख में उन्होंने इस तथ्य का खुलासा किया है कि एक-सा जीवन बिताने वाले, एक-सी पोशाक पहनने वाले और एक-सा धंधा करने वाले लोग धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर झगड़ते हैं. कैसी विडम्बना है कि विभिन्न धर्मों के लोग साथ रहकर काम-धंधा तो एक-सा करते हैं, पर पता नहीं क्यों धर्म और संस्कृति के नाम पर लड़ते हैं. यह वर्ग-विभाजित समाज की देन है. बल्कि कहना चाहिए खुदगर्जों की अपसंस्कृति है जो अपने हित-साधन के लिए लोगों को लड़ाती है. प्रेमचंद ने कहा था– 'यह दरिंदों का समाज है जिससे लड़ने के लिए हथियार उठाना लाज़मी है. विदेशी पूंजी की उदारवादी नीति एक बार शहरी लोगों को रास आ सकती है, पर ग्रामीणजन के लिए वहां कोई स्थान नहीं है. आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियां गांवों तक पहुंच रही हैं क्योंकि भारत का सत्तर प्रतिशत उपभोक्ता गांवों में बसता है. इस आयातित उभोक्तावादी संस्कृति से ग्रामीण अपनी सांस्कृतिक विरासत तो खोयेगा ही, परम्परागत व्यवसाय खोकर परावलम्बी हो जाएगा. महंगाई, शोषण और विलासिता उसकी कमर तोड़ देगी. देश में कुटीर और लघु उद्योग समाप्त हो जाएंगे. किसान मनुष्य से अधिक मशीन हो जाएगा. वह उसी तरह पिसता रहेगा जिस तरह प्रेमचंद के पात्र पिसते रहे.' गोदान के पात्र होरी के माध्यम से प्रेमचंद ने परिवर्तन के यथार्थ को शब्द दिये. 'होरी' आज भी बदहाल है.

प्रेमचंद भविष्यदृष्टा थे. स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् राजनेता अंग्रेज़ शासकों के

मानिंद ही कहीं शान-शौकत और आराम की ज़िंदगी न बिताने लगें, इसकी चेतावनी उन्होंने 'गबन' उपन्यास में पात्र देवीदीन के माध्यम से आज़ादी के काफी पहले ही दे दी थी. वह कहता है– 'साहब, सच बताओ, सुराज का कौन-सा रूप आपके सामने है? तुम भी यदि बड़ी-बड़ी तलब लोगे, अंग्रेज़ों की तरह बड़े-बड़े बंगलों में रहोगे, बड़ी-बड़ी गाड़ियों में घूमोगे तो ऐसे सुराज से देश का क्या कल्याण होगा. सत्ता की राजनीति पर सटीक टिप्पणी करते हुए वे 'आहुति' कहानी में सचेत करते हैं कि स्वराज आने पर यदि सम्पत्ति का ऐसा ही प्रभुत्व रहा, पढ़ा-लिखा समाज भी स्वार्थांध हो यूं ही लूट-खसोट करता रहा तो ऐसे स्वराज का क्या अर्थ? जिन बुराइयों के लिए जनता आज लड़ रही है, आज़ादी के बाद भी यदि वे बनी रहीं तो क्या वह इसलिए उन्हें सिर चढ़ाएंगे कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं? जॉन की जगह गोविंद को बैठा देने से क्या होगा.' इसका अर्थ यह भी हुआ कि समकालीनता के माने सीमित नहीं हैं कि वह केवल अपने समय को रेखांकित करता है. उसमें निकट भूत भी है और भविष्य की आहट भी. उसका फलक उतना सीमित नहीं है जैसी कि प्राय: आमधारणा होती है.

जिन बुराइयों के लिए जनता आज लड़ रही है, आज़ादी के बाद भी यदि वे बनी रहीं तो क्या वह इसलिए उन्हें सिर चढ़ाएंगे कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं? जॉन की जगह गोविंद को बैठा देने से क्या होगा.

जनकवि बाबा नागार्जुन की समाजिक-सांस्कृतिक चेतना को रेखांकित करती 'अकाल और उसके बाद' कविता की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं– 'कई दिनों तक चूल्हा रोया/चक्की रही उदास/कई दिनों तक कानी कुतिया/सोई उसके पास/कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त/कई दिनों तक चूहों की भी/हालत रही शिकस्त/दाने आये घर के अंदर/कई दिनों के बाद/धुंआ उठा आंगन के अंदर/कई दिनों के बाद/कौए ने खुजलाई पांखें/कई दिनों के बाद.' यहां चूल्हा रोया, उदास चक्की, कानी कुतिया का उसके पास सोना, छिपकलियों की गश्त और चूहों की शिकस्त में जो लाक्षणिकता, व्यंजना और गहराई है, वह दूर तक सोचने पर विवश करती है.

नरेश मेहता भारतीयता की अपनी गहरी दृष्टि के लिए जाने जाते हैं. प्रकृति, मनुष्य और काल के माध्यम से उन्होंने मानव जीवन के यथार्थ और इतिहास के अंतर्सम्बंधों को प्रस्तुत किया है. उनकी कविताओं में उदात्तता, मनुष्यता, देवत्व अध्यात्म, वेद, इतिहास, धर्म-ग्रंथ, वैष्णवता, प्रकृति, उपनिषदीय चेतना और माधवता

के तत्व मौजूद हैं.

मुझे नईम याद आते हैं जो साम्प्रदायिक सौहार्द के जबरदस्त समर्थक थे. उनकी दृष्टि में मानव-धर्म से बड़ा कोई धर्म नहीं है. वे धर्म, समुदाय, पंथ और जाति से ऊपर थे. उन्हें हिंदू-मुस्लिम के खांचों में बांटकर नहीं देखा जा सकता था. वे लकड़ी के गणेश बनाते थे और देवास के नारायणी मेले में बढ़-चढ़कर भाग लेते थे. सौहार्द की भावना को पेश करती उनकी ये पंक्तियां देखिए – 'चिट्ठी-पत्री, खतों-किताबत के मौसम/फिर कब आयेंगे/रब्ब जाने/सही इबादत के मौसम फिर कब आयेंगे/चेहरे झुलस गये कौमों की लू लपटों में/गंध चिरायध की आती छपती रपटों में/युद्ध क्षेत्र से क्या कम है/मुल्क हमारा/इससे बदतर कमायत के दिन कब आयेंगे?'

हाल ही में सूर्यबाला का उपन्यास 'कौन देस का वासी' आया है. कुछ समय पूर्व उनकी एक कृति 'अलविदा अन्ना' आयी थी. इससे भी पहले उनकी एक कहानी प्रकाशित हुई थी 'मानुष गंध'. इन तीनों कृतियों का भाव-बोध और लक्ष्य एक है. इनसे भारतीयता के प्रति सूर्यबालाजी की अटूट आस्था और उसे स्वीकारने के प्रति उनके अति आग्रह का पता चलता है. शायद ऐसा जुनून कम ही देखने को मिले. पूंजीवादी सोच से पश्चिम की पतनशील आधुनिकता अर्थहीन नवीनता के साथ भारतीय युवाओं पर थोपी जा रही है. संवेदनशील युवा द्वंद्व में हैं कि वे पूर्व को थामें या पश्चिम को. इधर बेटे-बेटियों को अमेरिका भेजकर इतराने वाले अभिभावक समझ नहीं पा रहे हैं कि उनके द्वारा उठाया कदम सही था या गलत.

स्त्री को कमज़ोर और कमतर मान लिंग-आधारित भेदभाव पर प्रहार करता मीराकांत का सशक्त नाटक है– 'नेपथ्य राग'. पुरुष के सामंती सोच का प्रतीक. महाराज विक्रमादित्य विदुषी महिला रवाना को राजसभा का सदस्य मनोनीत करते हैं, पर नवरत्नों को एक विवाहित ज्ञानमार्गी स्त्री का सभासद होना रास नहीं आता. सत्ता के केंद्र में एक स्त्री और वह भी अपनी प्रतिभा के बल पर! इसे कैसे बर्दाश्त किया जा सकता था. इस संदर्भ में रवाना को बाद में पता चलता है कि नवरत्नों को सभा में जिह्वाविहीन सभासद चाहिए. यदि स्त्री सभासद बने तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिए. स्त्री को चुप रहने और चुप रखने का रिवाज़ पहले से चला आ रहा है. महिला आरक्षण बिल के विलम्बित होने के पीछे कहीं इसी प्रकार की पुरुषवादी सोच तो नहीं? यदि चुनी गयी सारी महिला सांसद पार्टी लाइन तोड़कर एक हो गयी तो बहुमत के आधार पर पुरुषों को सत्ता से बेदखल कर देंगी?

लेखकीय विवेक को प्रकट करती एक और रचना है डॉ. चित्रा चतुर्वेदी का

उपन्यास 'तनया'. राजा ययाति शाप के भय और यश की लालसा के कारण अपनी किशोरवय पुत्री माधवी को महर्षि गालव को सौंप देते हैं ताकि वे अपने गुरु विश्वामित्र की आठ सौ श्यामवर्णी कर्णवाले घोड़ों की दक्षिणा की मांग को पूरा कर सकें. कितना क्रूर मज़ाक था एक स्वप्नदर्शी किशोरी के साथ कि महर्षि के क्रोध से बचने और वाहवाही लूटने के लोभ में पिता ने पुत्री का पूरा जीवन होम दिया. यही नहीं, माधवी अविवाहित रहकर तीन राजाओं और एक महर्षि की भोग्या बन, प्रत्येक को एक-एक पुत्र देने को बाध्य हुई. पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को अपनी सम्पत्ति मान उसकी देह और भावनाओं के साथ खिलवाड़ करने की इससे अधिक घृणित घटना और क्या हो सकती है!

इसके इतर ग्रामीण परिवेश के चितेरे मिथिलेश्वर की लम्बी कहानी 'जमुनी' सांस्कृतिक समझ की संवेदनात्मक कहानी है. इसमें एक साधारण कृषक परिवार के प्रेम, आस्था, विश्वास, आशा–निराशा, हर्ष-विलाप का मर्मस्पर्शी चित्रण है. किसान परिवार की चिंता, खुद कष्ट उठाकर अपनी बीमार भैंस को मौत के मुंह से बचाने की है. आज जब आदमी, आदमी के प्रति असंवेदी हो रहा है, अपने पशु की प्राण-रक्षा की चिंता का प्रयास करना निश्चित ही सोचने को बाध्य करता है. आज सब ओर स्वार्थ, संवेदना पर हावी है. जहां स्वार्थ होगा, वहां संवेदना का विस्तार नहीं हो सकेगा.

वैश्वीकरण और उदारवाद के नाम पर जो बाज़ारवाद फल-फूल रहा है, वह भी हमारी चिंता का विषय है, विश्वव्यापीकरण के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा अपने उत्पादों की खपत के लिए विज्ञापन जगत का सही-गलत इस्तेमाल किया जा रहा है. एक नये आर्थिक उपनवेशवाद को जन्म दिया जा रहा है. हमारी भाषा, साहित्य और संस्कृति पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है. एक नयी टाई संस्कृति जन्म ले रही है. लोग जीवन के हर प्रसंग में राष्ट्रीय बनने के बजाय अंतर्राष्ट्रीय बनने के लिए बेचैन हैं. हमारी श्रेष्ठ परम्पराओं और जीवन–मूल्यों को ध्वस्त किया जा रहा है. बहुराष्ट्रीय कम्पनियां माल ही नहीं, विचार भी बेच रही हैं. बड़ी होशियारी से माल के साथ-साथ विचार भी हमारे मन-मस्तिष्क पर प्रत्यारोपित किये जा रहे हैं. अब यह समझ लिया गया है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए उदारीकरण का अर्थ बराबरी नहीं, अविकसित देशों में अपना बाज़ार खड़ा करना है. इसलिए वे टीवी विज्ञापनों के माध्यम का दुरुपयोग कर रहे हैं. आज युवाओं को सांस लेने वाले जूते चाहिए जबकि आज आम आदमी का सांस लेना दूभर हो रहा है. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का उद्देश्य मुनाफा कमाना है. वे अपने अंशधारकों के प्रति जवाबदार हैं,

उपभोक्ताओं के प्रति नहीं. वैश्वीकरण और उदारीकरण जिस तेज़ी से हमारे समक्ष आ रहे हैं, वे किसी सुनामी से कम नहीं हैं. इस प्रतिरोध को ठंडा करने के लिए विश्व व्यापार संगठन, विश्वबैंक और विकसित राष्ट्र ने अब 'मानवीय चेहरे के साथ उदारीकरण' का जुमला उछाला है.

ख्यात वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिन्स की अत्यंत महत्वपूर्ण किताब है 'ब्रीफ आंसर्स टू बिग क्वेश्चन्स'. बड़े प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर. इसमें उन्होंने प्रकृति, प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, समुद्र के बढ़ते तापमान, जल-ज़मीन का शोषण, ओझोन पर्त तथा अन्य सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों को लेकर प्रश्न उठाये हैं कि यदि पृथ्वी की ऐसी ही दुर्दशा होती रही तो क्या हम पृथ्वी पर जीवित रह सकेंगे?

सुप्रसिद्ध लेखक वाय.एन.हरारी की किताब है. 'इक्कीसवीं सदी के लिए इक्कीस सबक, पाठ'. हॉकिन्स की विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए वे भी व्यक्त करते हैं कि हो सकता है कि जब हम 'ग्रोन अप' हों, तब हमारे लिए कोई काम-धंधा ही न बचा रहे उनका आग्रह है कि विद्यार्थी अपने बारे में ईमानदारी से सोचें. आत्म-निरीक्षण करें. विचार करें कि मैं कौन हूं? मेरे जीवन की क्या सार्थकता है? आत्म-समीक्षा करें. आत्म समीक्षा से बढ़कर और कोई यूनिवर्सिटी नहीं है.

फिलवक्त अपेक्षा यही है कि साहित्यकार उपभोक्तावादी प्रलोभन में न फंसकर सच्चाई को प्रस्तुत करें. जो रचनात्मक हस्तक्षेप हो रहा है उसे और तेज़ तथा प्रभावी बनायें. विसंगतियों को बेपर्दा करने की कोशिशें जारी रखें. ❑

कला का इष्ट

मनुष्यों के बीच रहते हुए भी मैं अकेला था. यह सही है कि बाहर से जबतक संवेदनाएं या प्रेरणाएं प्राप्त नहीं होतीं तब तक ज़िंदगी में जान नहीं आती. सम्पूर्णतः आत्म-निर्भर व्यक्ति सम्पूर्ण शून्य होता है.

आध्यात्मिक साधना का ध्येय भले ही सम्पूर्ण शून्य की प्राप्ति हो, कला का ध्येय तो यह नहीं है, न उसका यह स्वभाव ही. अंतर और बाह्य की परस्पर क्रिया से जनित जो भी जीवन है, वह कला का इष्ट है. इसके बिना वह शून्य है. मैं शून्यता की सम्भावना से इन्कार करता हूं.

– मुक्तिबोध (विपात्र में)

और हम आगे निकल गये

● अशोक अंजुम

जिनसे बंधे हुए थे रिश्ते,
वे सब धागे निकल गये!
छूट गया अपनापन पीछे,
और हम आगे निकल गये!

हर दिल में तूफान छोड़कर,
खेत और खलिहान छोड़कर,
चौपालों की शान छोड़कर,
पथराए अरमान छोड़कर,
मीठे-मीठे बोल छोड़कर,
भोलापन अनमोल छोड़कर,
सूने-सूने खेत छोड़कर,
धुली-धुली-सी रेत छोड़कर,
आंसू भीगे गाल छोड़कर,
सबको अपने हाल छोड़कर,
हर बंधन का साथ छोड़कर,
रोती मां का हाथ छोड़कर,
इक दिन जाने क्या सूझा
हम जल्दी आगे निकल गये,
छूट गया अपनापन पीछे
और हम आगे निकल गये!

आंगन की तुलसी ने रोका,
पीपल ने, इमली ने रोका,
खेतों की मिट्टी ने रोका,
चूल्हे की रोटी ने रोका,
पोखर, ताल, तलइया रोके,
तोड़ के खूंटा गइया रोके,
चीं-चीं फुदक चिरइया रोके,
सनन-सनन पुरवइया रोके,
रोका गलियों-चौबारों ने,
रोका दिल के त्योहारों ने,
रोका बुझे-बुझे यारों ने,
रोका बांहों के हारों ने,
हमें बांध ना लें ज़ंजीरें,
झटपट भागे, निकल गये!
छूट गया अपनापन पीछे,
और हम आगे निकल गये!

कुछ सोचा ना आगे-पीछे,
कुछ देखा ना ऊपर-नीचे,
मायाजाल शहर का खींचे,
दौड़ पड़े हम आंखें मीचे,
चांद-सितारे हमको भाए,
बाज़ारों में हम भरमाए,
धुल-धुंए के बादल छाए,
कहां आ गये, समझ ना पाए,
मतलब के सब रिश्ते-नाते,
मन की थाह समझ ना पाते,
बस मुंह-देखी प्रीत निभाते,
वक्त पड़े पर पीठ दिखाते,
ढोल दूर के सुनकर हम–
किस ओर अभागे, निकल गये!
छूट गया अपनापन पीछे,
और हम आगे निकल गये!

लॉकडाउन में कुछ पन्ने ज़िंदगी के

● अमृता सिन्हा

15 अप्रैल 2020

ज़िंदगी के इस बोझिल वातावरण में जीवन को संतुलित करने की गरज़ से खुद को कविताओं में खोने का प्रयास करती हूं. प्रिय कवि राजेश जोशी जी की कुछ पंक्तियां मेरी डायरी के पन्ने पर चमकती हैं, बार-बार पढ़ती हूं और सोचती हूं कितनी मौजूं हैं ये पंक्तियां आज के परिप्रेक्ष्य में, जब हम सब अपने अपने घरों में कैद हैं, नदियां, समंदर, परिंदे, दरख्त सब कितने दूर हो गये हैं हमसे–

नदियों से बात करना
चाहता हूं इस समय
पर टेलीफ़ोन पर
यह मुमकिन नहीं
उन दरख्तों का भी मेरे
पास कोई नम्बर नहीं
जो अक्सर रास्तों में
मिल जाया करते हैं
परिंदों के पास मोबाइल होगा
इसकी उम्मीद नहीं

रात के एक बज रहे हैं, नींद आंखों से गायब है. अपने बिस्तर से लगी खिड़की के पारदर्शी कांच से बाहर झांकने की कोशिश करती हूं. नीचे अजीब-सा सन्नाटा पसरा है. झींगुर की भाषा में एक अनजानी कहानी कानों तक पहुंच रही है जिसे सुनते ही त्वचा पर अजीब-सी सरसराहट होने लगती है. बाहर रोशनी तो है पर एकदम खामोश, दूर तक कहीं कोई कोलाहल नहीं. सामने बिल्डिंग की खिड़की से एक झीनी-सी रौशनी तैरती हुई झांकती है बीमार पीली-सी रौशनी.

रात के सन्नाटे में अनायास ही ऊपर के किसी माले में थोड़ी हलचल-सी सुनाई देती है, मन में कुछ खटकता है, खिड़की से नीचे झांकती हूं, नीचे एम्बुलेंस खड़ी देख कर मन आशंकाओं से भर जाता है. ऊपर से देखने पर आकृतियों को पहचानने में मुश्किल हो रही है, सभी के चेहरों पर मास्क है. शायद कोविड-19 पॉज़िटिव है कोई शख्स, अब जल्द ही सोसायटी से अपडेट आयेगा. मन में ढेरों विचार कौंध जाते हैं , बाहर बिखरी रौशनी ज़्यादा बीमार लगने लगती है. भयग्रस्त सन्नाटों को चीरती झींगुर की आवाज़ों से बचना चाहती हूं, खिड़की बंद कर सोने का उपक्रम करने लगती हूं.

1 मई 2020

देखते ही देखते दिन बीत गये और बिना आहट ही मई का महीना भी आ गया. आज मई की पहली तारीख है, कामगारों को समर्पित दिन, मई दिवस. जबकि पूरी दुनियां में प्राय: सब कामकाज ठप्प हैं, किसी तरह रोटी का जुगाड़ करता आम आदमी जीवन के मकड़जाल में उलझा, कोशिश कर रहा है सभी समीकरणों को हल करने का, ऐसे में कामगारों की बेहतर स्थिति की उम्मीद भी कैसे हो. हालाँकि अपनी क्षमताओं के अनुरूप सभी कोशिश कर रहे हैं ज़रूरतमंदों की सहायता करने की, इंसानियत का तक़ाज़ा भी यही है.

सुबह के सात बज रहे हैं आंखें खुलते ही अपने कमरे की खिड़की का गुलाबी पर्दा एक तरफ़ सरका कर सुबह का दीदार करती हूं. दूर खड़ा, धूप धुला, नहाया गुलमोहर ताकता है एकटक, हाथ हिलाता, मुस्काता. ज्यों-ज्यों सूरज गदराते गुलमोहर के लाल रंग पर सुनहरा रंग बुरक़ जाता त्यों-त्यों गुलमोहर थोड़ा और निखार आता है.

बावजूद इसके लॉकडाउन के इस दौर में सब कुछ ठहरा-सा प्रतीत होता है. खामोश सड़कें, ऊंची इमारतें, नीला आकाश बस इतना ही देख पाते हैं हम बिल्डिंग की ऊंचाई से. हमारे आसपास के अनगिनत फ्लैटों में जाने कितने लोग रहते हैं पर सब ओर बेचैनी पसरी दीखती है, एकरसता का अहसास होता है, एक अनिश्चितता सी दीखती है. स्थिति सामान्य होने की कामना लिये सभी सिमट गये हैं अपने-अपने दायरों में. यूं ही गुज़र रही है ज़िंदगी... बस, दूर खड़ा खिलखिलाता, निरंतर हंसता जाता है गुलमोहर... लाल सुर्ख फूलों से लदा, गदराता गुलमोहर.

24 मई 2020

मां का आज पच्चासीवां जन्मदिन है. कल ही मां से बात हुई थी, ज़रा थकी सी आवाज़ थी, तबीयत थोड़ी ढीली थी पर बीमार तो नहीं थीं. सोच ही रही थी कि उन्हें कॉल कर जन्मदिन की बधाई दूं कि मोबाइल पर एक मैसेज चमका, झुक कर पढ़ा तो होश फ़ाख्ता हो गये, लिखा था मां आईसीयू में हैं. मन बदहवास हो गया, मायके फोन कर सारा हाल जान कर बहुत दुखी हो गया मन, ब्रेन स्ट्रोक के कारण उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ा, अचानक ही जाने कैसे, हैरान हूं. कितना कठोर समय है कितना निष्ठुर!

चाह कर भी हम मां को देखने नहीं जा सकती. यहां तो घर की चौखट तक लांघना मना है, मन पिघल रहा है, उड़ना चाहता है, जाना चाहता है अपनी बीमार मां के पास. आंखें भींचकर सचमुच पहुंच जाती हूं मां के सिरहाने, सहला देती हूं उनके तलवे, प्यार से छूती हूं उनका ललाट... बैठती हूं वहीं उनके पास अपनी

ढेरों दुआओं के साथ, इस उम्मीद के साथ कि मां लौट आयेंगी घर जल्दी ही अपनी खनकती आवाज़ के साथ.

2 जुलाई 2020

वर्ष आधा खिसक गया पर समय की गति नहीं बदली. देह पर सूरज की किरणों को ओढ़े हुए चार महीने बीत गये. बस खबर दे जाती हैं सुबहें सूरज के उगने की शामें बता जाती हैं खबरें सूरज के अस्ताचल की, वरना सूरज के दर्शन किये जाने कितने महीने बीत गये, कोलतार की सर्पीली सड़कों पर चलना भूल से गये हैं पांव, कितनी बदल-सी गयी है ज़िंदगी, बदल गये हैं सारे मायने.

बाहर हल्की बारिश होने लगी है, मन भीग रहा है और आंखें भी. बस बाहर और भीतर के बीच एक झीनी-सी दीवार है, इस दीवार को ढहाना चाहती हूं मैं पर अनचाहे ही दिनोंदिन यह दीवार पहाड़ बनती जा रही है, मन समंदर हुआ जाता है. एक अजीब-सी बेचैनी का आलम है, मैं रसोई में जाकर एक ग्लास पानी लेकर गटक जाती हूं. हलक तर है पर मन की परतों में उदासी की तहें बरकरार हैं.

किताबों में डूबना चाहती हूं, अपने सिरहाने ढेरों किताबों को चूमती हूं.

सोचती हूं इस कमरे में यदि खिड़की ना होती तो क्या होता, तभी खिड़की से झांकता आसमान का एक टुकड़ा भीतर तक सहला जाता है. उसके नीलेपन में पाती हूं अपना वजूद तभी तो गले से लग जाती हूं उसके.

वहीं पास में दीवार से टिके कैनवस पर पड़ती है मेरी नज़र, जिसपर बी प्रभा की सांवली सलोनी ग्राम्या को उतारने की कोशिश की है मैंने. गहरे सांवले रंग की औरतें और उनके ग्रामीण जीवन की झलक से पेंटिंग जीवंत हो उठी है. इन्हें देखकर अपनी सहायिका सरला की याद आ रही है.

कल ही कॉल कर उसने बताया कि उसके गांव में जो कि महाराष्ट्र के ठाणे ज़िले के अंतर्गत आने वाली वसई तहसील पंजू गांव हैं वहां उसकी बूढ़ी सास अकेली है. वह जाना चाहती है उसके पास पर पूरा का पूरा गांव आइसोलेशन में है. गांव में आवाजाही पर सख्त पाबंदी है. खेतीबाड़ी की भी देख-भाल करने वाला कोई नहीं. सरला की बातें सुनकर मन उदास है, समझ में नहीं आता कि कैसे मदद करूं उसकी.

पर सच कहूं तो अब तो सिर्फ़ कोविड-19 से बचाव के सिवा कुछ और नज़र नहीं आ रहा. सरला भी ऐसा ही करेगी और हिम्मत से समय का सामना करेगी, उसने मुझसे वादा किया है.

(अमृता सिन्हा की डायरी का ही एक अंश सितम्बर अंक में भी छपा था, वहां लेखिका का नाम गलती से अमृता सिंह छप गया था.)

शक्ति के बिना शिव शव मात्र रह जाते हैं

● डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव

या देवी सर्वभूतेष शक्तिरूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः अर्थात् जो देवी सभी प्राणियों में शक्ति-रूप में स्थित है, उसको बारंबार नमस्कार है.

शक्ति सृष्टि का स्रोत है. शक्ति की महत्ता पुरातन युग्म प्रकृति-पुरुष से समझी जा सकती है. विराट पुरुष भी तभी सक्रिय या क्रियाशील होता है जब उसमें प्रकृति का समायोग होता है. पुरुष निष्क्रिय है, सक्रियता उसकी शक्ति अर्थात् नारी में निहित है. नर की अपेक्षा नारी का महत्त्व अधिक है– 'एक नहीं दो-दो मात्राएं नर से भारी नारी. बड़े से बड़े देवता– ब्रह्मा, विष्णु और शिव अपनी-अपनी शक्तियों (सरस्वती, लक्ष्मी और काली या शिवानी) से संयुक्त होकर ही योगी-योगेश्वर बन सकते हैं. कहा भी गया है– 'शक्ति के बिना शिव शव मात्र रह जाते हैं,' अर्थात् 'शिव' शब्द से यदि स्त्री वाची मात्रा 'इ' को निकाल दें तो शिव शब्द 'शव' बन जायेगा. यह बात स्वयं शिव ने अपनी शक्ति महेशानी से स्पष्ट शब्दों में कही थी– 'शक्ति बिना महेशानि सदाऽहं स्यां शयोऽधवा. शक्तियुक्तो सदा देवि शिवोऽहं सर्वकामदः अर्थात्– हे महेशानी! शक्ति यानी आपके बिना मैं शव मात्र हूं और शक्ति यानी आप से संयुक्त होकर मैं सभी कामनाओं का प्रदाता बन जाता हूं. यही कारण है कि जगज्जननी ममतामयी

देवी मां की स्तुति समस्त संसार करता है जैसे प्राचीन काल में मिस्र की देवी आइसिस, यूनान की एथेना, ईरान की अनाहिता, सीरिया की अतरगेटिस, आदि.

ऋग्वेद काल से ही शक्तिमती देवी की प्रार्थना की जाती रही है. मार्कण्डेयपुराण के अंतर्गत 'देवीमाहात्म्य' से शक्ति की आराधना में निरंतर वृद्धि होती गयी. आज देशभर में वासंती तथा शारदीय नवरात्र में देवी की प्रतिष्ठा और पूजा बड़ी धूमधाम से की जाती है. शारदीय नवरात्र में मां महिषासुरमर्दिनी दुर्गा की प्रतिमाओं को विशाल पंडालों में स्थापित किया जाता है तथा नौ दिनों तक नवदुर्गा रूप में उनकी पूजा-अर्चना की जाती है.

यों तो आदिशक्ति का प्राकट्य नाना रूपों में हुआ है, परंतु यहां उनके केवल दुर्गा रूप की चर्चा ही अभिप्रेत है. महाभारत के विराट पर्व में युधिष्ठिर ने दुर्गादेवी का स्तवन करते समय कहा था– दुर्गात् तारयसे दुर्गे तत् त्वं दुर्गा स्मृता बनै. अर्थात् तुम दु:सह दुखों से उद्धार करती हो, इसीलिए लोगों द्वारा दुर्गा कही जाती हो. विंध्य पर्वत के दुर्गस (जहां जाना कठिन हो) स्थान में रहने अथवा देवी तक पहुंचना दुर्गम होने के कारण वे दुर्गा कहलायीं. देवी ने चंड-मुंड और महिषासुर आदि असुरों का विनाश करके देवताओं तथा जगत का कल्याण किया था, इसीलिए उन्हें 'दुर्गतिनाशिनी' होने के कारण दुर्गा कहा गया. मार्कण्डेयपुराण के अनुसार देवी ने स्वयं बताया है कि दुर्ग नामक महाअसुर का वध करने के कारण मैं दुर्गा कहलाऊंगी– 'तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्. दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यसि'.

कतिपय पुराणों के अनुसार पार्वती का ही एक रूप दुर्गा है. मार्कण्डेयपुराण इसी मत को व्यक्त करता है. स्कंदपुराण के मारेश्वर खंड (अरुणांचल) में कहा गया है– जब पार्वती अरुणांचल पर तपस्यालीन थीं तभी देवों ने देवी से महिषासुर से रक्षा की गुहार लगायी. बाद में स्वयं महिषासुर मृगया करते अरुणांचल जा पहुंचा और पार्वती के रूप पर मोहित हो गया. उसने देवी से विवाह का प्रस्ताव रखा. देवी ने कहा– मैं तो विवाह करने के लिए ही तपस्या कर रही हूं. परंतु मैं उसी का वरण करूंगी जो मुझसे अधिक बलशाली होगा. फलत: अधिक बलशाली होने की परीक्षा देने के लिए देवी ने महिषासुर को युद्ध करने के लिए कहा और इस प्रकार युद्ध में देवी ने उसका वध कर दिया.

यदि ऐसा है तो देवी की प्रतिमाओं के साथ शेषशायी विष्णु, कृष्ण-जन्म तथा वैष्णव लक्षण चक्र और शंख क्यों अंकित हैं? इस प्रश्न का समाधान दुर्गा के जन्म से हो सकता है. विष्णु की योगनिद्रा ने ही गोकुल में नंद-यशोदा की पुत्री के रूप में जन्म लिया था और मथुरा में कंस के

कारागार में देवकी से जन्मे अपने पुत्र कृष्ण के बदले वसुदेव उस पुत्री को कारागार से ले गये थे. वहां कंस ने देवकी की संतान समझकर जब उस कन्या को पत्थर पर पटककर मार डालना चाहा, तब वह कंस के हाथ से छिटककर आकाश में अष्टभुजी देवी के रूप में दिखाई दी और उसने कहा– कंस! तुझे मारने वाला गोकुल में जन्म ले चुका है. वही देवी आकाशमार्ग से चलकर विंध्य पर्वत के दुर्गम स्थान पर जा पहुंची. विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, तथा मार्कण्डेयपुराण से इस तथ्य की पुष्टि होती है.

तस्मिन्काले यशोदापि मोहिता योगनिद्रया।
तामेव कन्यां मैत्रेय प्रसूता मोहिते जने।।

– विष्णु पुराण

महाभारत के खिलपर्व, हरिवंशपुराण के विष्णुपर्व में इस कन्या को विष्णु की योगकन्या एकानंशा (अनां अर्थात् अंशरहित अर्थात् अविभक्त) बताया गया है–

विद्दि चैनामधोत्पन्नामंशाद् देवीं जगत्पतेः
एकानंशो योगकन्यां रक्षार्थं केशवस्य तु

पौराणिक कोश में योगकन्या को यशोदा के गर्भ से उत्पन्न विष्णु की योग निद्रा अथवा योगमाया बताया गया है (भागवतपुराणानुसार).

महाभारत के विराटपर्व में युधिष्ठिर द्वारा की गयी दुर्गा-स्तुति से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है– 'यशोदा गर्भसंभूता नारायणवरप्रियाम्. नन्दगोपकुले जातां मंगल्यां कुलवर्धिनीय।।' (विराटपर्व, अध्याय ६.२). महाभारत के भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीता पर्व में अर्जुन के द्वारा दुर्गास्तोत्र, से भी यही तथ्य प्रकट होता है– 'गौपेन्द्रहमानुजे ज्येष्ठे नन्दकुलोदभवे'. मार्कण्डेयपुराण में कहा गया है– 'इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्. जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टवः'. तथा– 'या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता. नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः. सुप्रमेदागम में भी देवी को विष्णु की प्यारी बहन कहा गया है– आदि शक्तिसमद्भूता विष्णुप्राणानुजा शुभा.

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि दुर्गा पार्वती के सम्बंध के कारण जितना शैव प्रभाव प्रकट करती है उतना ही विष्णु की योगनिद्रा अथवा योगमाया के रूप में वैष्णव देवी भी कही जा सकती है. वस्तुतः दुर्गा आदिशक्ति हैं. वैसे भी दुर्गासप्तशती में स्पष्ट कहा गया है– महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती. अर्थात् शक्ति एक है, वही भिन्न-भिन्न नाम और रूप धारण करती है. देवी के कतिपय चित्र प्रस्तुत हैं–

दो सिंहों पर खड़ी महिषासुरमर्दिनी–

मधुरा में उत्तर कुषाण शैली में उकेरी गयी मां दुर्गा की एक अष्टभुजी विलक्षण प्रतिमा संप्रति बर्लिन के इंडियन आर्ट म्यूज़ियम (सं.सं. MIK-I5817) में संग्रहीत

है. इस प्रतिमा में देवी अपना एक-एक पैर अलग-अलग बैठे दो सिंहों पर रखकर स्थानक मुद्रा में खड़ी है. वे अपने निचले सामान्य हाथ से महिषासुर का गला दबोचे हैं बाएं और सामान्य दाएं हाथ से उसकी पीठ को नीचे की ओर दबा रही हैं. देवी के अन्य हाथों में सामान्य आयुध हैं, किंतु ऊपर से दूसरे दाएं तथा बाएं हाथ में क्रमश: सूर्य और अर्द्धचंद्र के प्रतीक पकड़े हैं. दो सिंहों तथा सूर्य-चंद्र के प्रतीकों के कारण देवी का यह स्वरूप विलक्षण बन गया है. प्राय: विद्वान दो सिंहों के वाहन वाली देवी को क्षेमंकरी कहते हैं, जो सच नहीं है. जब दुर्गा ने महिषासुर समेत सभी असुरों का वध करके देवताओं का क्षेम (कल्याण) कर दिया तब वह क्षेमंकरी (कल्याणप्रदाता) कहलायीं. दुर्गा के क्षेमंकरी स्वरूप में महिषासुर का अंकन नहीं किया गया था. वस्तुत: वाहन के रूप में दिखायी पड़ने वाले दो सिंह सिंहासन के दो अगले पाए हैं, पिछले दो पाए दर्शनीय नहीं होते हैं. अपने ऊपरी दोनों हाथों से देवी अपने शीश पर पुष्पमाला बांध रही है. उस माला को विद्वानों ने भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं.

सूर्य-चंद्रधारिणी महिषासुरमर्दिनी–

इस विलक्षण स्वरूप में महिषमर्दिनी की कई प्रतिमाएं आंकी गयी हैं. हरियाणा में भिवानी जनपद के एक गांव नौरंगाबाद से तीसरी-चौथी शती ई. की मिली षड्भुजी देवी की मृण्मूर्ति संप्रति हरियाणा स्थित गुरुकुल संग्रहालय में संरक्षित है. यह मृण्मूर्ति भी पूर्व वर्णित प्रतिमा के समान स्थानक मुद्रा में दो सिंहों की पीठ पर खड़ी है, दाईं ओर का सिंह खंडित है. यह देवी भी अपने निचले बाएं हाथ से महिष का गला दबोचे तथा दाएं हाथ से उसकी पीठ नीचे को दबा रही है. इस मूर्ति की देवी के ऊपर से निचले दाएं-बाएं हाथों में क्रमश: चक्र और शंख है. इस मूर्ति की देवी भी पुष्पमाला से अपना शीश संवार रही है. मात्र सूर्य-चंद्र और चक्र-शंख आयुधों को छोड़ उपर्युक्त दोनों मूर्तियों का अंकन समान है.

मथुरा-संग्रहालय के निदेशक रहते डॉ. नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी ने लगभग 400 ई. की उत्कीर्ण चतुर्दशभुजी महिषमर्दिनी की एक मूर्ति किसी एण्टीक्विटी डीलर के संग्रह में देखी थी. घुटने के नीचे का भाग तथा पांच दाएं हाथ खंडित हैं. बाएं सभी सुरक्षित हाथों में देवी ने नीचे से क्रमश: चषक, दो हाथों में असुर के दो पिछले पैर, धनुष, चक्र, अर्द्धचंद्र, पुष्पमाला या केश. दाएं बचे दो हाथों में शूलदंड तथा जलपात्र है. बाईं ओर के खंडित हाथों में ऊपरी एक हाथ में सूर्य का प्रतीक रहा होगा.

अपने ऊपरी दाएं-बाएं हाथों में सूर्य-चंद्र प्रतीक धारण करने वाली एक अन्य षड्भुजी महिषमर्दिनी की एक प्रतिमा अमरीका के लास एंजिलिस काउंटी

म्यूज़ियम ऑफ आर्ट में संग्रहीत है. उत्तर-कुषाणकालीन इस प्रतिमा के ऊपरी हाथों में सूर्य-चंद्र के प्रतीक प्रदर्शित किये गये हैं. इस प्रतिमा में खड़ी देवी को अपने दोनों निचले हाथों से महिषासुर का गला दबाते आंका गया है. प्रतिमा नें देवी का वाहन सिंह नहीं दिखाया गया है.

विष्णु के साथ महिषासुरमर्दिनी–

शेषशायी विष्णु के साथ महिषासुरमर्दिनी की एक अत्यंत सुंदर प्रतिमा संप्रति अमरीका के एक सज्जन के निजी संग्रह में है. पूर्व-मध्यकालीन अष्टभुजा प्रतिमा महिष की पीठ पर अपना दायां पैर रखकर बलपूर्वक असुर का संहार करती हुई प्रदर्शित है. महिषासुर का कटा शीश भूलुंठित है और उसकी कटी ग्रीवा से निकले मानवरूप असुर के शीश के केश देवी ने पकड़ रक्खे हैं. प्रतिमा के ऊपरी भाग में शेषनाग की शय्या पर लेटे हुए विष्णु की पदसेवा करती लक्ष्मी भी प्रदर्शित हैं. एक ही प्रतिमा में महिषमर्दिनी दुर्गा और शेषशायी विष्णु का अंकन प्रतिमा को असामान्य और विलक्षण बनाता है.

ऐसा ही महाबलीपुरम (तमिलनाडु) में पल्लवकालीन (७वीं शती) महिषमर्दिनी गुफा के आमने-सामने दो छोरों की भित्तियों में एक पर शेषशायी विष्णु तथा सामने के दूसरे छोर पर भयभीत भागते महिषासुर तथा उसकी सेना को खदेड़ती सिंहारूढ़ा देवी असुर पर शर-संधान करते उकेरी गयी है. देवी का सैन्यदल भी उसके साथ युद्धरत है.

कृष्ण-जन्म के साथ महिषासुरमर्दिनी–

कन्नौज (उ.प्र.) में एक मुस्लिम महिला को दफनाने के लिए खोदी जा रही कब्र के मलबे में 12 दिसम्बर 2002 ई. को एक ऐसा प्रस्तर-फलक निकला जिसमें एक ओर तपस्विनी पार्वती का और दूसरी ओर महिषासुरमर्दिनी का सुंदर अंकन था. फलक को 15 दिसम्बर 2002 को विधि-विधान से कन्नौज के सहायदेवी मंदिर में जड़ दिया गया. लेखक ने जब उस फलक को देखा तो उसके सुंदर अंकन के साथ-साथ उसके प्रतिमालक्षण से अत्यंत प्रभावित हुआ था. दशभुजी महिषमर्दिनी दुर्गा बायां पैर भूमि पर और दायां पैर महिषासुर के विखंडित धड़ पर टिकाये खड़ी हैं उनके हाथों में सामान्य आयुधों के साथ कटी ग्रीवा से निकले मानवी शरीर वाले असुर तथा एक अन्य असुर को उनके शीश के केशों से पकड़ रखा है. नीचे भूतल पर महिषासुर का कटा शीश पड़ा है. इस मूर्ति-फलक के ऊपर शीर्ष भाग में एक पृथक फलक है जिसमें कृष्ण जन्म का दृश्यांकन है. फलक के बाईं ओर नवजात शिशु के साथ मां लेटी है और एक बैठी महिला मां के पैर दबा रही है. फलक के दाईं ओर खड्ग-खेटकधारी दो रक्षक बैठे हैं और तीसरा खड़ा है. स्पष्टत: यह देवकी और कृष्ण का अंकन है. ❑

सेवाग्राम : एक शाम

● प्रफुल्ल शिलेदार

मिट्टी से लिपी हुई उस झोपड़ी से तुम कब के निकल चुके हो
तुम चार दीवारी के भीतर समा जाने वाले तो कभी थे ही नहीं

तुम वहां कुछ पल ही रुके थे, व्यर्थ है तुम्हें वहां ढूंढ़ना
तुम तो हवा बनकर पूरी दुनिया में फैल चुके हो
तुम वहां टिके थे कुछ पल, लेकिन वो तुम्हारी पीठ नहीं
इस जानते हुए भी लोग आते हैं यहां
तुम्हारी गंध को सांसों से खींच लेते भीतर तक
और घुला देते हैं अपने खून में नमक की तरह

समूचे परिसर में बिछी मोटी-सी रेत पर
सांझ का अंधेरा घना होकर बिखर जाता है
कुटिया में तुम्हारी चीज़ों के इर्दगिर्द भी जमा होता है अंधेरा
पर अंधेरे में घुली होती है बकुल की गंध
इसलिए वो सूखा-सा नहीं होता

ज़मीन पर बिछी रेत पर डाली जाती हैं लम्बी दरियां
रखा जाता है एक दिया जिसकी बाती निश्चल

इकतारे की सीधी ठेठ लय
सामुदायिक प्रार्थना के धीमे स्वर

एक पेड़ के गिर्द गोल चबूतरे पर
मेरे साथ बैठा होता है दूर से आया एक कवि
वह अपना अकेलापन मेरे सामने खोलने लगता है
अपनी कैंसर से बीमार पत्नी को अकेला छोड़कर
किस वादे को पूरा करने वह यहां आया
इसकी कहानी में बंधता जाता है

वह नहीं मानता किसी के कहीं रहने से पवित्र हो जाती है जगह
उसने भी कभी नहीं माना विचारों से अधिक किसी भी चीज़ को
वह बताता रहता है अपने यहां आने का अर्थ

जकड़ लेती है वह शाम
उसकी पकड़ से अपने पांव खींचकर निकालते हुए
एक सफेद गाड़ी में बैठकर मैं वहां से लौटता हूं
अंधेरे की महकती गंध साथ लेकर

शब्दों का सफ़र

अजगर करे न चाकरी

● अजित वडनेरकर

'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम. दास मलूका कह गये, सबके दाता राम.' इस दोहे में अजगर निरीह जंतुओं को भकोसने की वजह से नहीं बल्कि अपने निकम्मेपन की वजह से बदनाम हो रहा है. सर्प प्रजाति के इस विशालकाय जंतु का **अजगर** नाम हिंदी में खूब लोकप्रिय है. मलूकदास ने चाहे अजगर के काम-धाम न करने के दुर्गुण को नसीहत देने का ज़रिया बनाया हो मगर अजगर का यह नाम उसे भकोसने की खासियत के चलते ही मिला है. हालांकि बोलचाल में अजगर वृत्ति (सब कुछ हड़पना) और अजगर की तरह पसरना (दबंगई और निकम्मापन) जैसे मुहावरे भी प्रचलित हैं. अजगर संस्कृत का शब्द है और यह बना है **अज** + **गर**: से. वैदिक शब्दावली में भी इसका उल्लेख है.

संस्कृत में **अज** का अर्थ है जो जन्मा न हो. यह **अ** + **ज** से मिलकर बना है. संस्कृत की **ज** धातु में जन्म, जीवन, जीव आदि का भाव है. संस्कृत-हिंदी के **अ** उपसर्ग में नकार या निषेध का भाव है सो **अज** का अर्थ अजन्मा के अर्थ में अज का निहितार्थ स्पष्ट है. ईश्वर को **अज** कहा जाता है क्योंकि वे अनादि-अनंत हैं. ब्रह्मा, विष्णु, महेश को **अज** कहा जाता है. इस कड़ी में कामदेव भी आते हैं. चंद्रमा को चूंकि काम का प्रतीक माना जाता है इसलिए चांद का एक नाम **अज** भी है. हिंदू मान्यताओं में आत्मा अनश्वर होती है अत: जीव, आत्मा को भी **अज** कहते हैं. कालांतर में **अज** या **अजा** में जीव का स्थूल भाव प्रमुख होकर इसके मायने बकरा, बकरी, मेढ़ा, मेढ़ी आदि हुए. अनुमान लगाया जा सकता है कि दार्शनिक धरातल से उठे इस शब्द की अभिव्यक्ति कालांतर में कर्मकांडों अर्थात दान और बलि जैसी प्रथाओं के विकसित होने से बकरे या मेढ़े के अर्थ में सीमित हुई होगी अर्थात किसी काल में **अज** में सामान्य पशु का नहीं बल्कि बलियोग्य पशु का भाव रहा होगा. डॉ. राजबली पांडेय के हिंदू धर्मकोश के अनुसार यह नाम अथर्ववेद में अश्वमेध यज्ञ के संदर्भ में दी गयी पशुओं की

तालिका में आता है. यह भी उल्लेख है कि अथर्ववेद में शवक्रिया के अंतर्गत **अज** के महत्त्व की बात कही गयी है और उसे प्रेत का मार्गदर्शक माना गया है. यह दान या बलि की सामग्री तभी बन चुका होगा.

सर्प परिवार के एक विशालकाय जीव को **अजगर** नाम तभी मिला होगा जब इसमें निहित **अज** में बकरा या मेढ़े का भाव समा चुका था. अजगर का **गर** बना है **गृ** धातु से जिसमें गीला करने या तर करने का भाव है. **गृ** से बने **गर** का अर्थ हुआ निगलना, पीना, औषधि गटकना आदि. गौर करें, कुछ निगलने के लिए जिह्वा उसे तर या गीला ज़रूर करती है. यों भी सीधे निगले जाने वाले पदार्थ रसीले होते हैं. दवाइयां भी निगली जाती हैं क्योंकि उनके सेवन का उद्देश्य जायका लेना नहीं होता. संस्कृत की गल् धातु का अर्थ है टपकना, चुआना, रिसना, पिघलना आदि. गौर करें इन सब क्रियाओं पर, जो जाहिर करती हैं कि कहीं कुछ खत्म हो रहा है, नष्ट हो रहा है. यह स्पष्ट होता है इसके एक अन्य अर्थ में अंतर्धान होना, गुज़र जाना, ओझल हो जाना या हट जाना जैसे भाव हैं. कोई वस्तु अनंत काल तक रिसती नहीं रह सकती. स्रोत कभी तो सूखेगा अर्थात वहां जो पदार्थ है, वह अंतर्धान होगा. **गल्** धातु से ही बना है संस्कृत का **गल**: जिसका मतलब होता है कंठ, ग्रीवा, गर्दन आदि. इन शब्दों के लिए हिंदी में गला शब्द सर्वाधिक प्रचलित है जो **गल्** धातु से बने **गल**: का ही अपभ्रंश रूप है. गल् में निहित चुआने, टपकने जैसे भावों का विस्तार ही इसके अगले रूप **गर** में हुआ है.

यही **गर** यानी निगलने की क्रिया अजगर में भी है. अज यानी बकरा या मेढ़ा और गर यानी निगलना, भकोसना से मिलकर बने अजगर का जो अर्थ निकलता है, उसकी कल्पना सृरीसृप परिवार के विशालकाय अजगर के रूप में की जा सकती है जो देखते ही देखते भेड़, बकरी को निगलने के लिए कुख्यात था और आज भी है. दबंगई के साथ बहुत कुछ हड़पने के बाद एक किस्म की निष्क्रियता आनी स्वाभाविक है. हालांकि अजगरी निष्क्रियता में दानिशमंदों को बेवकूफी भी नज़र आती है जिसके चलते कई अजगर ने अपने सुखोपभोग से ही नहीं, जान से भी जाते रहे हैं. इतिहास गवाह है.

(शब्दों का सफ़र, राजकमल प्रकाशन, से साभार)

दुनियाभर में उपयोग की जानेवाली संपूर्ण वैज्ञानिक किट

किट : रु 1000 – आरोग्यवर्धक टॉनिक खुराक + किट

किट : रु 300 – आप ही अपने उद्धारक भाग 1,2,3 + 20 यूरिन टेस्ट पट्टी + टॉनिक भस्म

- 100 ऐकड़ा वीसा जाति ने 1500 किट का ऑर्डर दिया।
- एड्स के उपचार में भी सहायक है।
- शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ाती है।

जब शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है तब रोग मिटता है। रोग तो शरीर ही मिटाता है, दवा तो केवल रोग को मिटाने में आनेवाली बाधाओं को दूर करती है।

रोग : थैलेसीमिया, एड्स, टीबी, कैंसर, पथरी, पेशाब संबंधी रोग, हृदय संबंधी रोग आदि।

Sarla Pandit, Dena bank, Canal Road branch, Rajkot

A/c no. 019610002161

IFSC Code : BKDNO310196

पैसा भेजने के बाद अपना परिचय एवं पता भेजें या एसएमएस करें।

थैलेसेमीया, एड्स, टीबी, कैंसर के रोगियों को 1000 रुपये की किट मुफ्त बाँटी जाएगी।

अब तक स्वबचत का 2 करोड़ रुपया राष्ट्रीय कार्य हेतु प्रदान किया गया है

तन मन धन से राष्ट्रीय आरोग्य के लिए समर्पित

डॉ. हर्षद पंडित

M.V.Sc (Medicine) ● मोबाईल : 9428299637

''ॐ'' 4, करणपरा, राजकोट - 360 001 (गुजरात)

Email : drharshadpandit@gmail.com

www.rejuvenatewithoutmedicine.com

आइए, सरदार पटेल को समझें

सरदार पटेल यदि आज होते तो 145 वर्ष के हो चुके होते (जन्म अक्टूबर 1875) उनकी करनी ने उन्हें इतिहास-पुरुष बनाया था. किसी ने उन्हें चाणक्य कहा, किसी ने बिस्मार्क. निस्संदेह आज़ादी मिलने पर देश की पांच सौ से अधिक रियासतों के एकीकरण का जो काम उन्होंने किया, वह किसी भी व्यक्तित्व को महान बना सकता है. वे देश के पहले उपप्रधानमंत्री और गृहमंत्री थे. देश ने उन्हें लौहपुरुष के रूप में देखा.

इस सबके बीच देश में इस आशय की बातें भी होती रही हैं कि सरदार पटेल को उनका उचित देय नहीं मिला. उनकी महत्ता और योगदान को कम आंका गया है. उनके और देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के रिश्तों को लेकर भी समय-समय पर विवाद उठते रहे हैं. यह भी कहा जाता रहा है कि यदि कश्मीर का मामला उन्हें सौंपा जाता तो आज जैसी स्थिति न बनती; उनकी बात मानी जाती तो चीन-भारत के रिश्तों का भी वह रूप न होता जो आज है. उनके प्रशंसक तो यहां तक कहते रहे हैं कि नेहरू की जगह पटेल को देश का पहला प्रधानमंत्री बनाया जाना चाहिए था.

इन और ऐसी बातों को लेकर पिछले साठ-सत्तर सालों में बहुत कुछ लिखा गया है. गुजराती के वरिष्ठ रचनाकार डॉ. दिनकर जोशी का उपन्यास 'महामानव सरदार' (प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली) भी उन्हीं सवालों से जूझने वाली एक कृति है. डेढ़ सौ से अधिक कृतियों के रचयिता दिनकर जोशी का मानना है कि ऐतिहासिक उपन्यास और जीवनीपरक उपन्यास में अंतर होता है, जहां 'ऐतिहासिक उपन्यास का केंद्रबिंदु नायक नहीं तत्कालीन युग होता है जीवनीपरक उपन्यास में 'समाज और समझ की पार्श्व-भूमि में कथा-नायक के चरित्र का दर्शन कराना उद्देश्य होता है. उपन्यासकार का यह भी मानना है कि कथानायक और काल-खंड दोनों स्थिर हो चुके होते हैं अत: परिधि पर स्थिर होकर भिन्न-भिन्न कोणों से सबकुछ जांचना और

प्रस्तुत करना 'जीवनीपरक उपन्यास' की बड़ी कसौटी है. उपन्यासकार का दावा है कि उसने घटनाओं और बातों को भिन्न कोणों से जांच कर, घटना के पात्रों की समग्र व्यक्तित्व की निरंतरता को ध्यान में रखते हुए अपनी बात कहने का प्रयास किया है. रचनाकार इतिहास नहीं लिख रहा, पर जो कुछ लिख रहा है वह 'इतिहास यानी ऐसा हुआ' से अलग भी नहीं होना चाहिए. पाठक जब ऐतिहासिक उपन्यास या जीवनीपरक उपन्यास पढ़ता हैं तो यह मान कर चलता है जो कुछ कहा जा रहा है, यह सत्य घटनाओं पर आधारित है. इसलिए, ज़रूरी है कि ऐसी रचनाओं का लेखक प्रामाणिकता की कसौटी पर खरा रहे. दिनकर जोशी का कहना है कि अपने जीवनीपरक उपन्यासों में उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा है.

'महामानव सरदार' वल्लभभाई पटेल की जीवन-कथा नहीं है. यह उनके जीवन के एक विशेष काल-खंड, वर्ष 1945 से लेकर वर्ष 1950 तक, की विशिष्ट अवधि की घटनाओं को समझने-समझाने का एक सराहनीय प्रयास है. इस सारे प्रयास के केंद्र में सरदार पटेल का व्यक्तित्व है, जिन्होंने इतिहास के साथ-साथ भूगोल को भी प्रभावित किया. 1945 से 1950 के इन पांच सालों में देश का विभाजन हुआ, ढेर सारी रियासतों को एकत्र करके एक देश की रचना हुई, साम्प्रदायिकता की आग में भी देश झुलसा. और इस सबके बीच उस राजनीति ने भी आकार ग्रहण किया जो आज भी देश को प्रभावित कर रही है. कतई ज़रूरी नहीं है कि उपन्यासकार की स्थापनाओं और मान्यताओं को स्वीकारा ही जाये. सच तो यह है कि इस तरह की कृतियों में उपन्यासकार का अपना रुख न चाहते हुए भी कई बार राह में आ जाता है. रचनाकार के पूर्वग्रह भी होते हैं. बौद्धिक दबावों की भी एक भूमिका होती है. पर इस सबके बावजूद इस तरह की कृतियों से एक बौद्धिक ईमानदारी की अपेक्षा भी होती है. सच पूछा जाये तो यह एक चुनौती होती है लेखक के सामने. इस चुनौती के समक्ष वह कितना सफल होता है, यही बात ऐसे किसी प्रयास की सार्थकता को स्थापित करती है.

यहीं यह बात भी स्वीकार की जानी चाहिए कि कई बार ऐसी कृतियों का पाठक भी कुछ पूर्वग्रहों से ग्रस्त होता है. उसका सोच और मान्यताएं भी जीवनीपरक उपन्यास की प्रामाणिकता को प्रभावित करते हैं. इन सब बातों को एक साथ साधना आसान नहीं है. लेकिन दिनकर जोशी का कहना है, उन्होंने लिखते समय इन सब बातों को ध्यान में रखा है. इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह कृति एक महत्वपूर्ण प्रयास है. सराहनीय भी. गुजराती की इस कृति का हिंदी अनुवाद डॉ. प्रज्ञा शुक्ल और कन्हैया कोष्टी ने किया है. ❑

किताब से

विभाजन : देश को बचाने का एकमात्र उपाय

● डॉ. दिनकर जोशी

सरदार के कार्यालय की प्रशासनिक परम्परा यह थी कि सुबह 9.30 बजे जो भी ताज़ा डाक आयी हो, सरदार के निजी सचिव शंकर की टेबल पर रख दी जाती. शंकर इस डाक को अपने लिपिक को बुलाकर खुलवाते, उस पर नज़र डालते और फिर जो गृह विभाग के सचिव वी.पी. मेनन को भेजनी होतीं, उन्हें भेजते. शंकर को जो खास महत्त्वपूर्ण लगती, वे सरदार के टेबल पर रख दी जाती और शेष पत्र सम्बंधित विभागों को निर्देशों के साथ भेज दी जातीं.

नियमानुसार आज शंकर ने जो चिट्ठियां देखीं, उसमें एक पत्र बस्तर के महाराजा द्वारा राजनीतिक विभाग के अंग्रेज़ अधिकारी कोरफील्ड कॉनरेड को सम्बोधित था. यह राजनीतिक विभाग अब तक वाइसराय के मार्गदर्शन में कार्य करता था और कोरफील्ड कॉनरेड उनके परामर्शदाता थे. इस विभाग के कार्यक्षेत्र में देशी रजवाड़ों के साथ सम्बंधों का मामला भी शामिल था. मृत राजा के वारिसदार के रूप में पाटवी कुंवर को स्वीकृति देने या न देने से लेकर राजा को अपने क्षेत्र में किन-किन ब्रिटिश कानूनों का पालन करना है, उस बारे में भी तमाम फैसले इस राजनीतिक विभाग के दायरे में आते थे. इस हिसाब से राजनीतिक विभाग का यह ब्रिटिश अधिकारी कोरफील्ड कॉनरेड राजाओं का भी राजा था. कैबिनेट मिशन प्लान के अंतर्गत जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में जो अंतरिम सरकार बनी थी, उसमें इस राजनीतिक विभाग का जिम्मा गृह विभाग को सौंपा गया था. अत: कोरफील्ड कॉनरेड भी अब सरदार पटेल के प्रशासनिक दायरे में शामिल एक ब्रिटिश अधिकारी हो चुका था.

उड़ीसा के दक्षिण-पश्चिम छोर पर स्थित बस्तर राज्य वैसे तो अपेक्षाकृत छोटा-सा था, परंतु वहां पाये जानेवाले खनिजों की खानें बहुत महत्त्वपूर्ण थीं. बस्तर का एक सीमावर्ती छोर निजाम के राज्य को भी छूता था. इस निजाम का राज्य देश के तमाम रजवाड़ों में सबसे अव्वल दर्जे का राज्य था. उसकी आबादी भी बहुत बड़ी थी और वार्षिक उपज अन्य राज्यों के योग

समान थी. यह निजाम मुस्लिम लीग व मुहम्मद अली जिन्ना के अत्यंत निकटस्थ परिजन के समान थे. वे समय-समय पर जिन्ना की आर्थिक सहायता भी करते. यह बात सर्वविदित थी कि निजाम व उनके सहायक यह सोचते थे कि यदि देश अंग्रेज़ी हुकूमत से मुक्त हो जाए तो हैदराबाद को स्वतंत्र राज्य बनाया जाए या उसे पाकिस्तान में मिला दिया जाए.

शंकर के हाथ में बस्तर के राजा का जो पत्र आया, उसमें निजाम का भी उल्लेख था. केवल तीन से चार वाक्यों वाले इस पत्र में और कोई विवरण नहीं था. इस कारण संदर्भ समझ में नहीं आ रहा था. शंकर की यह भी समझ में नहीं आ रहा था कि बस्तर जैसे बिल्कुल छोटे से राज्य में हैदराबाद के निजाम व वाइसराय के राजनीतिक विभाग की क्या दिलचस्पी होगी ? उन्होंने पत्र सरदार के समक्ष रखा.

सरदार ने इस पत्र पर नजर फेरी. काफी देर तक वे गहरी सोच में डूबे रहे. सरदार जानते ही थे कि निजाम जिन्ना के समर्थक हैं और ब्रिटिश शासन के अंत के साथ हिंदुस्तान की राह में कांटे बिछाने में सक्षम हैं. रोज की तरह दोपहर को भोजन के लिए घर जाते वक्त उन्होंने शंकर को अपने पास बुलाकर वह पत्र लौटाते हुए कहा, 'शंकर, इस पत्र से सम्बंधित जो भी फाइलें हैं, उन्हें आप संबद्ध विभागों से आज ही प्राप्त कर मंगवा लीजिएगा. उन फाइलों पर आप एक नजर डालना और ऐसी व्यवस्था करना कि सारा मैटीरियल आज शाम को ही मुझे मिल जाए.' इतना कहते हुए उन्होंने जोड़ा, 'लेकिन सावधानी रखना, यह बात हम दोनों के अलावा किसी को मालूम नहीं चलनी चाहिए.'

सांझ ढले शंकर ने उस पत्र की पृष्ठभूमि समान फाइल सरदार के टेबल पर रखी. शंकर को रोके रख सरदार ने उस फाइल का देर शाम तक अध्ययन किया. उस अध्ययन का जो निष्कर्ष निकला, उससे सरदार चौंक उठे.

बस्तर आर्थिक रूप से पिछड़ा राज्य माना जाता था. इस राज्य का विकास किस तरह तेज़ी से हो तथा राज्य में धंधा-रोज़गार बढ़े, खजाने में भी सम्पत्ति की वृद्धि, पिछड़ी जनता को शिक्षा, उपचार तथा सड़कें दी जा सकें, इसके लिए कोष भी स्थापित किया जा सके– इन सब मुद्दों पर प्रलोभन देकर कोरफील्ड कॉनरेड ने बस्तर के राजा के गले एक प्रस्ताव उतार दिया था. इस प्रस्ताव में बस्तर का हैदराबाद से सटकर स्थित, खनिज द्रव्यों से भरपूर प्रदेश खनन के लिए निजाम को दीर्घावधि के पट्टे पर देने की बात कही गयी थी. इसके बदले में निजाम द्वारा इस करार के होते ही एक निश्चित राशि बस्तर राज्य को दिये जाने और फिर दीर्घावधि के इस पट्टे के दौरान उसके मुनाफे से भी कुछ प्रतिशत हिस्सा दिये जाने का प्रावधान किया गया था.

इस प्रस्ताव की उत्पत्ति का केंद्र बस्तर के महाराज हो ही नहीं सकते, यह समझने में सरदार को देरी नहीं लगी. सरदार को तर्कबद्ध ढंग से लगता था कि जिन्ना ने निजाम की मार्फत कोरफील्ड कॉनरेड को यह बात समझाई होगी. स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद बस्तर राज्य का हिंदुस्तान में शामिल होना निर्विवाद था. इस राज्य का खनिजों से समृद्ध प्रदेश यदि इस प्रकार निजाम लम्बी अवधि के लिए हड़प लें तो उसका भरपूर लाभ मिल सकता था; परंतु निजाम का बस्तर में विस्तार आर्थिक के अलावा राजनीतिक रूप से भी देश के लिए बाधाजनक हो सकता था.

यह योजना कोरफील्ड कॉनरेड की भी हो सकती थी. सरदार ने इस दिशा में भी सोचा. अधिकांश ब्रिटिश हाकिम पहले से ही थोड़ा कम तो थोड़ा ज़्यादा मुस्लिमों के तरफदार ही रहे थे, सरदार यह जानते थे. कोरफील्ड कॉनरेड भी इनमें से एक था. ब्रिटिश अब जबकि इस देश से रवानगी की तैयारी कर रहे हैं, ऐसे में कोरफील्ड के शैतानी दिमाग ने हो सकता है, युद्ध की आग में झुलसती धारा के वक्त अपनाई जानेवाली नीति का अनुकरण करने की चाल चली हो. सरदार इस दिशा में भी सोच रहे थे. कुछ भी हो, लेकिन इस करार को किसी भी कीमत में मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता और उसे यहीं रोक देने के लिए सरदार ने पक्का फैसला कर लिया. उन्होंने तत्काल बस्तर के राजा से व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क साधा.

सरदार ने जैसा सोचा था वैसा ही हुआ. बस्तर का राजा अभी किशोरावस्था में ही था. वह इस षड्यंत्र के बारे में कुछ नहीं जानता था. उसने राज्य के दीवान को सरदार के पास भेजकर कहलवाया कि इस विषय में राज्य की जनता के हित तथा समग्र देश के व्यापक हित में आपको जो उचित लगे, वही कीजिएगा.

हर दिशा से पक्की योजना तय करने के बाद सरदार ने राजनीतिक विभाग के कोरफील्ड कॉनरेड को अपने खंड में बुलवाया. बस्तर के राजा, हैदराबाद के निजाम तथा राजनीतिक विभाग के बीच हुए पत्राचार की पूरी फाइल उनके सामने रखते हुए सरदार ने कहा, 'मिस्टर कोरफील्ड, इन तमाम पत्राचारों को मैंने देख लिया है. मुझे लगता है कि यह करार करने से आप जनहित में जो करना चाहते हैं, उससे दीर्घावधि में बस्तर राज्य का नुकसान ही होगा. इसके बावजूद इस बारे में जो कोई भी फैसला करना है, वह इस वक्त नहीं हो सकेगा, क्योंकि महाराजा अवयस्क हैं.'

'और इसीलिए उनकी किशोरावस्था को ध्यान में रखते हुए सरकार ने बस्तर की जनता के कल्याण के लिए यह प्रस्ताव तैयार किया है.' कोरफील्ड बीच में ही बोल पड़े.

'बस्तर राज्य ने निजाम की सहायता के बगैर भी इतने सालों तक अपने हितों की रक्षा पूर्णत: की है. अब जबकि राजा कुछ ही समय में वयस्क होने वाले हैं, तब राजनीतिक विभाग को जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए. इसमें जनहित की बजाय कोई और उद्देश्य होने का संदेह पैदा होने की सम्भावना है. कृपया इस बात को यहीं खत्म कर दीजिए.'

कोरफील्ड कॉनरेड सकपका गया. वह जिस उद्देश्य से इस योजना पर आगे बढ़ रहा था, उस उद्देश्य को सरदार पूरी तरह भांप चुके थे, यह कोरफील्ड की समझ में आ गया. उसके पास कोई जवाब सूझ नहीं रहा था.

●●●

पिछले कुछ महीनों में घटी इन समग्र घटनाओं का दसों दिशाओं से मूल्यांकन करते हुए सरदार को लगता था कि अब मुस्लिम लीग की मांग स्वीकार कर और देश का विभाजन करके ही इस देश को बचाया जा सकेगा. उन्हें प्रतीत हो चला था कि कांग्रेस का अब तक सिद्धांत के नाम पर विभाजन का विरोध ज़्यादा लम्बा नहीं खिंच सकेगा.

जिस विभाजन को स्वीकार करने की दिशा में सरदार मन-ही-मन आगे बढ़ रहे थे, वही विचार सन् 1941 में यानी पांच साल पहले कांग्रेस के ही एक शीर्षस्थ अग्रणी ने व्यक्त किया था; परंतु तब स्वयं सरदार ने ही उसका विरोध किया था. इस विरोध के पीछे भूमिका तो गांधीजी की ही थी. चक्रवर्ती राजगोपालचारी ने सन् 1941 में कांग्रेस के अपने साथियों को समझाया था कि मुस्लिम लीग की अलग देश की मांग जितनी जल्द स्वीकार ली जाएगी, उतना उन्हें कम देकर हम ज़्यादा पा सकेंगे. पाकिस्तान की मांग तब इस हद तक विनाशक नहीं थी. वह उस वक्त उसके प्रारम्भिक चरण में ही थी. राजगोपालाचारी चाहते थे कि यह मांग इसी समय (1941 में) स्वीकार कर ली जानी चाहिए. तब यदि यह मांग मान ली गयी होती तो जो काम मुट्ठी-दो-मुट्ठी में हो सकता था, उसे इस वक्त दो-दो हाथों से लुटाकर करने की ज़रूरत नहीं पड़ती. तब राजाजी की कही बात सभी ने जुनून के साथ नकार दी थी और सरदार ने तो तब यह तक कह दिया था कि राजाजी आग उगल रहे हैं.

यह सब सोचने के बाद सरकार को पूरा भरोसा हो गया था कि अब जितना विलम्ब होगा, उतना ज़्यादा नुकसान उठाना पड़ेगा. उन्होंने मन-ही-मन तय किया कि इस विषय में सबसे पहले जवाहरलाल के साथ खुलकर बात कर लेना ही उचित होगा. जवाहरलाल प्रशासनिक रूप से प्रधानमंत्री और पार्टी के आधार पर कांग्रेस अध्यक्ष भी थे. कांग्रेस कार्यकारिणी के समक्ष यदि अपना मनोगत प्रकट कर यह निर्णय करना हो तो जवाहरलाल को ही

आगे के कदम उठाने चाहिए.

दूसरे दिन सरकारी कार्यालय बंद होने और दिल्ली के राजमार्गों पर चहल-पहल कम हो जाने के बाद सरदार ने योर्क रोड स्थित निवास पर जाकर जवाहरलाल से मुलाकात की. सरदार कभी-कभी यूं ही अचानक जवाहरलाल से मिलने उनके घर पहुंच जाते. इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी. 1, औरंगजेब रोड स्थित सरदार का निवास-स्थान और योर्क रोड स्थित जवाहरलाल का निवास-स्थान ज़्यादा दूर नहीं थे. टहलते हुए भी आया-जाया जा सकता था. कई बार तो सरदार को विदा करते हुए ठेठ उनके घर तक पहुंच जाते तो सरदार से भी कई बार ऐसा हो जाता. सरदार और जवाहरलाल के बीच नीतिगत विचारों एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण को लेकर अच्छे-खासे मतभेद थे और ये मतभेद राजनीतिक स्तर पर लोगों से छिपे हुए भी नहीं थे. फिर भी, दोनों के बीच व्यवहार में इस प्रकार का मन-मिलाप बना हुआ था.

सरदार को इस वक्त आये देख जवाहरलाल उन्हें अपने बैठक खंड की बजाय अभ्यास खंड में ले गये.

'जवाहरलाल,' अध्ययन खंड में नीरव एकांत में बात शुरू करते हुए सरदार ने कहा, 'देश के भविष्य को लेकर मेरे मन में कुछ विचार नये सिरे से उमड़े हैं. मुझे इस सम्बंध में आपसे खुलकर बात करनी है.'

'सरदार, आपने जो सोचा होगा, वह पुख्ता ही होगा. इसे लेकर मेरे मन में कोई संदेह नहीं है.'

'पहली बात तो यह है,' सरदार ने कहा, 'लीग के मंत्रियों के साथ अब और ज़्यादा वक्त तक संयुक्त ज़िम्मेदारी से काम नहीं हो सकेगा. इसका हमें अब पर्याप्त अनुभव हो चुका है.'

'आपकी बात से मैं सहमत हूं.' जवाहरलाल ने कहा, 'लीग के मंत्री बिलकुल गैर-ज़िम्मेदार तथा विध्वंसक ढंग से काम कर रहे हैं. इस विषय में मैंने वाइसराय से भी चर्चा की है; परंतु वाइसराय तक इस विषय में किंकर्तव्यविमूढ़ की दशा में हैं.'

'लीग के साथ यह भागीदारी बेमेल जोड़े की शादी के समान है.' सरदार ने दृढ़ स्वर में कहा, 'मुझे लगता है कि बेमेल जोड़े का यह संसार जितना लम्बा खिंचेगा, देश को उतना ही नुकसान होगा.'

'लेकिन इस बेमेल जोड़ को तोड़ने का मतलब तो पूरे देश को दंगों में धकेलने के समान ही होगा. हम ऐसा जोखिम उठा सकते हैं भला?' जवाहरलाल ने पूछा.

'सामान्य परिस्थितियों में ऐसा जोखिम नहीं उठाया जा सकता; परंतु मुझे याद है, स्कूल में संस्कृत के एक शिक्षक ने कुछ इस तरह सिखाया था कि जब सर्वनाश हो रहा हो, तब जितना बच सके उतना बचा लेना चाहिए.' सरदार ने कहा, 'अब इस

सुवाक्य को लागू करने का समय आ गया है.'

'मतलब? आप कहना क्या चाहते हैं, सरदार?' नेहरू चौंके.

'सरकार और देश में जो हालात पैदा हुए हैं, उसमें यदि हम सरकार नहीं बचा पाए जो ज़्यादा कुछ खोना नहीं पड़ेगा, परंतु यदि देश को नहीं बचाया तो भावी पीढ़ी हमें माफ नहीं करेगी.' सरदार ने कंधे पर की शॉल गले में लपेटते हुए कहा.

'विभाजन टालने के लिए अब तक हम बहुत कुछ कर चुके हैं. अब आप जो कह रहे हैं, उसका तो यही मतलब निकलता है कि...'

'हां, मैं यही कहना चाहता हूं.' सरदार ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'अब विभाजन टालने की ज़रूरत नहीं है. विभाजन को स्वीकार कर देश को बचाने की ज़रूरत है.'

जवाहरलाल एक क्षण स्तब्ध रह गये. सरदार जो कह रहे थे, उसकी सच्चाई का साक्षात्कार उन्हें भी इस दौरान हो चुका था. उनके चित्त में भी भारी असंतोष उमड़ रहा था.

'सरदार,' जवाहरलाल धीरे से बोले, 'हम यदि विभाजन को स्वीकार कर लें तो इसका मतलब यह होगा कि हम बापू को खोने जा रहे हैं. बापू ने यह घोषणा कर ही दी है कि देश का विभाजन उनकी लाश पर ही होगा.'

सरदार ने होंठ बंद कर लिये. गरदन ऊंची की. झुकी नज़रें थोड़ी उठायीं और फिर बोले, 'आप बापू की चिंता छोड़ दीजिए. बापू को समझाने का काम मैं संभाल लूंगा.'

'विभाजन के साथ अनेक समस्याएं जुड़ी हुई हैं, सरदार!' जवाहरलाल ने चिंतित स्वर में कहा.

'वे सारी समस्याएं कालांतर में हल हो जाएंगी.' सरदार बोले, 'अब हमारे सामने दो ही विकल्प बचे हैं– या तो अंधाधुंध, दंगे और लगभग आंतरिक युद्ध के कगार पर देश को छोड़कर ब्रिटिशों को राज करने दें या फिर मुसलमानों की मांग के मुताबिक पाकिस्तान देकर देश के अधिकांश हिस्से को और उसकी जनता को शांति से रहने के लिए बचा लें.'

'विभाजन के बाद भी जैसी आप सोचते हैं, ऐसी शांति इन दो बंटे हुए देशों में आयेगी?' जवाहरलाल ने संदेह जताया.

'अलग होनेवाले पाकिस्तान में क्या होगा, मैं नहीं जानता और उसके बारे में हमें चिंता करने की भी ज़रूरत नहीं है.' सरदार बोले, 'परंतु जो देश स्वतंत्र हो रहा है, वह हिंदुस्तान है और हिंदुस्तान किसी से अलग नहीं हो रहा. वह तो है ही. केवल हमें उसे अराजकता से बचाना है और इसके लिए बड़ी कीमत चुकाने की स्थिति पैदा हुई है.'

'इतनी बड़ी कीमत चुकाने के बाद भी 550 रजवाड़ों को काबू करने की समस्या

तो बनी हुई ही है.' जवाहरलाल के स्वर में चिंता घुली हुई थी.

'एक बार राजनीतिक आधार पर मुसलमानों के साथ मामला निपट जाए और अंग्रेज़ यहां से रवाना हों, उसके बाद रजवाड़े तो नकाब ओढ़े बाघ जैसे हैं. उन नकाबों को हटाने में थोड़ी उदारता और समभाव की ही ज़रूरत पड़ेगी.' सरदार ने आंखें थोड़ी सिकोड़ते हुए कहा.

'आपकी बात मैं समझ सकता हूं, सरदार लेकिन आपको नहीं लगता कि हम यदि विभाजन को स्वीकार लेंगे तो जिस जनता ने आज तक हम पर विश्वास किया है, वही जनता हमारे खिलाफ़ हो जाएगी?'

'नहीं!' सरदार ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'हमें जनता को रास्ता दिखाना है. जनता के दिखाये रास्ते पर नहीं चलना है. यदि ऐसा होता है तो यही मतलब निकलेगा कि कांग्रेस पार्टी देश को नेतृत्व देने में विफल रही है.'

'यह भी हो सकता है कि पाकिस्तान-विरोधी क्रुद्ध होकर आक्रामक बनें और इससे पाकिस्तान समर्थक और ज़्यादा उग्र हो जाएं.' जवाहरलाल जैसे भविष्य देख रहे हों, इस तरह दीवार की ओर देखकर बोले, 'यदि ऐसा हो तो देश अराजकता की आग में झुलस जाएगा.'

'और ऐसे कोई हालात पैदा हुए तो जो लोग स्वयं को इस देश की जनता मानते हैं, उन्हें सबसे कम बरदाश्त करना पड़ेगा.' सरदार ने दृढ़ता से कहा, 'और जो लोग खुद को इस देश की जनता नहीं मानते, ऐसे लोगों को इस अराजकता के कारण कुछ अधिक खोना पड़ेगा. जवाहरलाल, मेरे कहने का तात्पर्य आप ठीक से समझेंगे.'

सरदार का संकेत किस दिशा में था, यह जवाहरलाल ठीक से समझ गये. हालांकि इस संकेत के साथ उनके मन का समाधान नहीं हो रहा था. उन्हें लगा कि सरदार की दृढ़ता के आगे इस समय मेरा विरोधी सुर सफल नहीं होगा. उन्होंने थूक गले उतारा और फिर बोले, 'जो राष्ट्रवादी मुसलमान लीग के खिलाफ़ जाकर हमारे साथ रहे हैं, उनकी संख्या भी छोटी-मोटी नहीं है. हमारे विभाजन को स्वीकार करने से उनमें भी जो रोष पैदा होगा...'

'उसकी चिंता करने का कोई कारण नहीं है.' इतने गम्भीर विवाद के बीच मार्मिक रूप से हंसकर सरदार ने अदब से बांधे अपने हाथ छोड़े और फिर जवाहरलाल के कंधे पर हाथ रखकर उनकी पीठ थपथपाते हुए बोले, 'इस देश में केवल एक ही राष्ट्रवादी मुसलमान है और वे तो हमारे साथ ही हैं.' कहकर सरदार खुलकर हंसे.

जवाहरलाल सरदार का स्पर्श और हास्य दोनों समझ गये. सरदार के इस धारदार कटाक्ष का मानो लुत्फ उठा रहे हों, इस तरह इतनी गम्भीरता के बीच जवाहरलाल भी ठहाका लगाकर हंसे.❑

किताबें

हंसो हंसो यार हंसो

प्रेम जनमेजय

अमन प्रकाशन, कानपुर,

मूल्य - 350 ₹

शीर्ष व्यंग्यकार के इस व्यंग्य-संकलन का नाम भले ही हंसने के लिए कह रहा हो, पर ये व्यंग्य हंसाते कम ही हैं. ये व्यंग्य परेशान ज़्यादा करते हैं. रोज़मर्रा की ज़िंदगी से जुड़े विषयों को लेकर की गयी गम्भीर टिप्पणियां बहुत कुछ सोचने के लिए बाध्य करती हैं. पढ़ने में मज़ा भी आता है, पर पढ़ते-पढ़ते जब चींटी-सी काट जाती है तो व्यंग्य की सार्थकता समझ आती है.

शब्दों की दहलीज़ पर

सं.-सुनील देवधर,राजेंद्र श्रीवास्तव

भावना प्रकाशन,

दिल्ली - 110091,

पृष्ठ-304, मूल्य-400₹

इस पुस्तक में देश के अस्सी से अधिक रचनाकारों ने डॉ. खड़से के व्यक्तित्व-कृतित्व का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है. उन्हें एक ज़िम्मेदार नागरिक और ज़िम्मेदार रचनाकार के रूप में समझने का एक अवसर है यह कृति. देखा जाये तो यह उस 'पुल' का भी अभिनंदन है, जो मराठी और हिंदी को जोड़ती है. यह कृति डॉ. खड़से के समय और समाज को भी समझने का अवसर देती है.

बर्फ सी गरमी

राज हीरामन

स्टार पब्लिकेशंस प्रा.लि., 4/5-बी, आसफ अली रोड, नयी दिल्ली -02

मूल्य - 150 ₹

लेखक के इस तीसरे संग्रह में दस कहानियां संकलित हैं. अपने इर्द-गिर्द घटी सत्य कथाओं को आधार बनाकर लिखी ये कहानियां मूलत: लघु भारत यानी मॉरीशस के सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश को साकार करती हैं. इनकी कहानियों में पात्रों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण दिखाई देता है तथा इनका कथ्य हमें सोचने-विचारने को विवश कर देता है.

कच्चे रंग

मोहित कटारिया

वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली -02

मूल्य-200 ₹

सात खंडों में विभाजित इन कविताओं में कवि केवल ख्वाबों में रोता है और अपने रोने की आवाज़ों को भी चुपचाप खुद ही सुनता है और उस पर मुग्ध होता जाता है. कवि बहुत से अनजान रिश्तों की अंतहीन आवाज़ों को हौले से सुनते हुए अपनी रचनाओं में दर्ज करता चलता है. इनमें भाषा की रवानी, बिम्बों का सटीक चुनाव, समय और भूगोल की जुगलबंदी, पाठक को चकित करती है और बांधे भी रखती है.

सबके गांधी

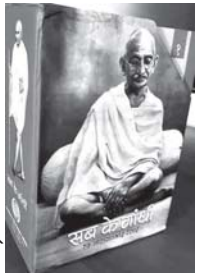

महात्मा गांधी के निजी सचिव महादेव भाई देसाई के सुपुत्र नारायणभाई देसाई ऐसे भाग्यशाली मनुष्य थे, जिन्हें बापू की गोद में खेलने का अवसर मिला. इस दृष्टि से देखें तो बापू के विचार जैसे उन्हें घुट्टी में मिले थे. और यह हमारी पीढ़ी का सौभाग्य है कि उसे उन जैसे व्यक्तित्व के मार्गदर्शन में गांधी को समझने का मौका मिले. आसान नहीं है गांधी को समझना और समझाना, पर नारायण भाई ने बड़ी ईमानदारी और निष्ठा के साथ ये दोनों काम किये. उनकी 'गांधी-कथा' के माध्यम से देश भर में किशोरों और युवाओं ने मनुष्यता के इतिहास के विलक्षण महापुरुष की जीवन-झांकी को देखा-जिया. गांधी को समझने का एक और तरीका भी नारायण भाई ने खोजा था– छोटी छोटी पुस्तिकाओं के माध्यम से गांधी के विचारों को जनता तक पहुंचाने का. ये पुस्तिकाएं मूलत: गुजराती में लिखी गयी थीं. राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के अध्यक्ष रमेश थानवी ने इस 'पहुंच' को विस्तारित करने की आवश्यकता ही नहीं समझी, उसे क्रियान्वित भी दिया. जिस प्रामाणिकता के साथ नारायण भाई ने ये पुस्तिकाएं लिखी थीं. उसी प्रामाणिकता के साथ श्री रामनरेश सोनी ने इनका हिंदी में अनुवाद भी किया. सहज और सरल भाषा में 'माटी से मर्द', 'गांधी की तीन देन', 'गांधी की कुछ विशेषताएं', 'अहिंसा', 'साम्प्रदायिक सौहार्द', 'रचनात्मक कार्यक्रम', 'गांधी के उपवास', 'नारी', 'राष्ट्रपिता', 'व्यूह-रचनाकार', 'अस्पृश्यता निवारण', 'गांधी के बारे में कुछ गलतफहमियां' शीर्षकों से लिखी गयी ये छोटे और आकर्षक आकार की पुस्तिकाएं निश्चित रूप से आने वाली पीढ़ियों के लिए एक उपहार हैं.

श्री रमेश थानवी ने अपने 'पुरोवाक' में यह स्वीकार है कि बापू के विचारों में अवगाहन आसान काम नहीं है. उनका यह भी मानना है कि महापुरुष का जीवन ऐसा ही होता है कि हम एक तरफ से छूने की कोशिश करें तो दूसरा किनारा छूट जाता है. फिर भी यदि अवगाहन की कोशिश नारायणभाई जैसा व्यक्ति करे तो प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध होती है.

'सब के गांधी' शीर्षक से प्रकाशित ये पुस्तिकाएं छापी भी बड़े आकर्षक ढंग से गयी हैं. बारह पुस्तकों के इस सेट की सहयोग राशि है पांच सौ रुपये. इसे राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, 7-ए, झालान संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्राप्त किया जा सकता है.

भवन समाचार

दिव्यांगों के लिए वर्चुअल शिक्षा

भवन विद्यालय, **चंडीगढ़ केंद्र** के विशेष सेल विभाग के छात्रों ने वर्चुअल शिक्षा ली. उनके शिक्षक ऑनलाइन वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से उनके साथ रहे. स्कूल इन छात्रों के लिए सप्ताह में कम से कम २ इंटरैक्टिव ऑनलाइन शिक्षण सत्र सुनिश्चित करता है ताकि उन्हें अपनी शिक्षा जारी रखने में सक्षम बनाया जा सके. छात्र बातचीत करने के लिए सत्र का बेसब्री से इंतज़ार करते हैं. इसके लिए उनका उत्साह देखते ही बनता है. छात्रों ने रक्षाबंधन त्योहार के लिए राखी भी बनायी.

छात्रों की पुलिस के साथ एकजुटता

चेन्नई स्थित एनजीओ, संकल्प के सहयोग से भवन की ओल्ड स्टूडेंट सोसाइटी ने इस सप्ताह के शुरू में शहर के ट्रैफिक पुलिस लाइन, सेक्टर 29 और विभिन्न चौकियों पर चंडीगढ़ ट्रैफिक पुलिसकर्मियों को 15000 से अधिक चॉकलेट वितरित किये. अध्यक्ष श्री विनय के. अग्रवाल के साथ बीओएसएस के 9 सदस्यों की एक टीम ने श्री जसविंदर सिंह (डीएसपी ट्रैफिक) को चॉकलेट भेंट की. महामारी के बीच में बिना थके काम करने के लिए यातायात पुलिस विभाग का आभार माना गया.

श्रद्धांजलि

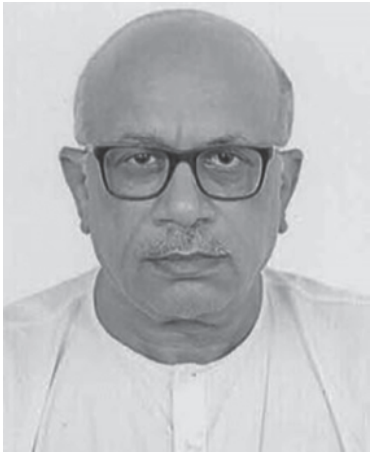

विगत दिनों डॉ. व्यास प्रसाद पांडे (संस्कृत विद्वान और पूर्व प्रधानाचार्य, मुंबादेवी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, **मुंबई केंद्र**) का 62 वर्ष की उम्र में मुंबई में निधन हो गया. डॉ. व्यास ने सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से अपनी शास्त्री उपाधि (व्याकरण में) प्राप्त की थी. भवन के मुंबादेवी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय के छात्र के रूप में, उन्होंने राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नयी दिल्ली से अपनी आचार्य की उपाधि (व्याकरण में) प्राप्त की. उन्हें पीएचडी से भी सम्मानित किया गया था. जे.जे. टिबरेवाला विश्वविद्यालय, झुंझुनू (राजस्थान) में उन्होंने पीएच.डी. अनुसंधान गाइड के रूप में कार्य किया. प्रोफेसर (व्याकरण) के रूप में भवन के मुंबादेवी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय में लगभग 35 वर्षों तक काम किया जिसमें 5 वर्ष प्रधानाचार्य भी रहे. अपनी सेवानिवृत्ति के बाद से वे भवन के संस्कृत परीक्षा विभाग में परीक्षा उपसचिव के रूप में कार्यरत थे. मुंबई और अन्य स्थानों के विभिन्न संस्थानों में संस्कृत और भारतीय संस्कृति पर उन्होंने कई व्याख्यान दिए. उन्हें मुम्बई के प्रेमपुरी आश्रम में स्वर्गीय स्वामी अखंडानंद सरस्वती के प्रकाशन, सत-साहित्य द्वारा संस्कृत विद्या-पुरस्कार से सम्मानित किया गया था. उनके परिवार में अब उनकी पत्नी हैं. भवन परिवार की ओर से श्रद्धांजलि.

शीर्ष विद्यालय

भवन विद्यालय, **चंडीगढ़ केंद्र** को स्काउनेज़ इंडिया द्वारा किये गये एक हालिया सर्वेक्षण में चंडीगढ़ में शीर्ष प्रदर्शन करने वाला स्कूल और देश में छठा सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया. स्कून्यूज प्रिंट, ऑनलाइन और टीवी के सबसे बड़े मल्टीमीडिया प्लेटफार्मों में से एक है, जिसमें शिक्षा क्षेत्र की घटनाएं विशेष रूप में शामिल होती हैं. भवन विद्यालय ने हमेशा मूल्य शिक्षा के साथ-साथ अकादमिक उपलब्धि को अपनी प्राथमिकताओं के रूप में रखा है. साल-दर-साल सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन सुनिश्चित करने के लिए ये लगातार प्रयास करता रहा है.

कार्यक्रमों का आयोजन

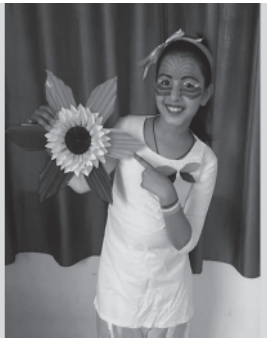

कोविद १९ दिशानिर्देशों का पालन करते हुए, भवन के **त्रिपुरा** विद्यामंदिर केंद्र में जन्माष्टमी, रक्षाबंधन और स्वतंत्रता दिवस पर कार्यक्रम आयोजित किया गया.

भवन के विद्यार्थियों का श्रेष्ठ प्रदर्शन

पंचकुला केंद्र ने कक्षा 12 वीं सीबीएसई बोर्ड परीक्षा में मानविकी संकाय में ट्राइसिटी टॉपर के साथ भाग लिया. कृषा सेठी 99प्रतिशत और रिया गुप्ता ने 98प्रतिशत अंक प्राप्त किये. प्रियांशु रौनियार ने मेडिकल संकाय में 95.4 प्रतिशत अंक पाकर वाणिज्य संकाय में टॉप किया है. कार्तिक शर्मा 98.4प्रतिशत अंक पाकर नॉन-मेडिकल संकाय में शीर्ष पर रहे. स्कूल के कुल 124 छात्रों में से, 53 छात्रों ने 95 प्रतिशत से ऊपर और 89 छात्रों ने 90 प्रतिशत से ऊपर अंक प्राप्त किये. कुल मिलाकर भवन विद्यालय, पंचकूला के छात्रों ने दसवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया. विद्यालय को हार्दिक बधाई.

कृषा सेठी 99%

रिया गुप्ता 98%

प्रियांशु रौनियार 95.4%

कार्तिक शर्मा 98.4%

श्रद्धांजलि

पुणे केंद्र की समिति के सदस्य एडवोकेट श्री बी.ई. अव्हाड (77 वर्ष) का कोविद-19 के कारण निधन हो गया। भास्करराव अव्हाड एक प्रतिष्ठित कानून विशेषज्ञ और कई वर्षों तक बार काउंसिल, महाराष्ट्र और गोवा के पूर्व अध्यक्ष थे. वह अक्टूबर 2010 से पुणे केंद्र के सदस्य थे. वह भवन की समिति की बैठकों में सक्रिय रूप से शामिल थे और स्कूलों के शिक्षकों और प्रमुखों को मार्गदर्शन प्रदान करते थे. उनके बाद उनके परिवार में उनकी पत्नी एक पुत्री और पुत्र हैं. भवन की ओर से श्रद्धासुमन.

ऑनलाइन वास्तु व्याख्यान

भवन के ज्योतिष भारती, **मुंबई केंद्र** ने विश्वप्रसिद्ध वास्तु सलाहकार, डॉ. नरेंद्र एच. सहस्त्रबुद्धे द्वारा एक ऑनलाइन वास्तु व्याख्यान आयोजित किया. भवन के ज्योतिष भारती के अध्यक्ष और भारतीय विद्या भवन मुंबई के ट्रस्टी, श्री दिनेश के. दफ्तरी ने वास्तु में पर्यावरण और इसके महत्व के बारे में अपने बहुमूल्य विचार साझा किये. डॉ. सहस्त्रबुद्धे ने योग शास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद और विज्ञान से संबंधित वास्तु के बारे में विस्तार से बताया. उन्होंने यह भी बताया कि हमारे प्राचीन वास्तु ज्ञान का मूल्य क्या है और आधुनिक चिकित्सक इसका दुरुपयोग कैसे कर रहे हैं.

समय की आवश्यकता है नई तकनीक

कोविद -19 वायरस हमारे आसपास मौजूद है, कोई निश्चित नहीं है कि स्कूल कब फिर से खुलेंगे. शिक्षा को जारी रखने के लिए शिक्षकों ने तकनीकी को अपनाना शुरू कर दिया है. उन्होंने पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन, वीडियो बनाना और ऑनलाइन कक्षाएं लेना सीख लिया है, जिसमें (ऑगमेंटेड रियलिटी ऐप) के विशेष फीचर भी शामिल हैं. पर्यावरण दिवस और योग दिवस पर प्रतियोगिताएं आयोजित की गयीं. पर्यावरण दिवस पर, छात्रों को पोस्टर, पेंटिंग या पौधों के चित्र बनाने के लिए कहा गया. योग दिवस पर, छात्रों को उनके परिवारों के साथ योगासन करते हुए वीडियो भेजने के लिए कहा गया.

'भारतीय भाषाओं में अंतर-संवाद' विषय पर वेबिनार

'भाषा का संबंध इतिहास, संस्कृति और परम्पराओं से है. भारतीय भाषाओं में अंतर-संवाद की परम्परा पुरानी है और ऐसा सैकड़ों वर्षों से होता आ रहा है, यह उस दौर में भी हो रहा था, जब वर्तमान समय में प्रचलित भाषाएं अपने बेहद मूल रूप में थीं. श्रीमद् भगवत गीता में समाहित श्रीकृष्ण का संदेश दुनिया के कोने-कोने में केवल अनेक भाषाओं में हुए उसके अनुवाद की बदौलत ही पहुंचा. उन दिनों अंतर-संवाद की भाषा संस्कृत थी, तो अब यह जिम्मेदारी हिंदी की है.' यह विचार वरिष्ठ पत्रकार एवं माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी)नई दिल्ली में आज हिंदी पखवाड़े के शुभारंभ के अवसर पर 'भारतीय भाषाओं में अंतर-संवाद' विषय पर आयोजित वेबिनार में व्यक्त किये.

हिंदू कालेज में हिंदी दिवस पर वेबिनार

मातृभाषाओं में पढ़े-समझे बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती. रटी हुई भाषा में रटे हुए विचार ही आयेंगे, वहां मौलिक और नये विचार पैदा नहीं हो सकते.' सुप्रसिद्ध हिंदी कवि नरेश सक्सेना ने उक्त विचार हिन्दू कालेज की हिंदी साहित्य सभा का उद्घाटन करते हुए व्यक्त किये. सभा द्वारा आयोजित वेबिनार में लखनऊ से जुड़े कवि सक्सेना ने हिंदी की वर्तमान स्थिति के प्रति चिंता और दु:ख व्यक्त करते हुए कहा कि हिंदी आज तक ज्ञान की भाषा नहीं बन पायी, साथ ही कोई भी भारतीय भाषा ज्ञान की भाषा नहीं बन सकी. विद्यार्थियों के साथ संवाद सत्र का संयोजन साहित्य सभा के संयोजक हर्ष उरमलिया ने किया. इससे पहले विभाग के प्रभारी डॉ पल्लव ने शैक्षणिक सत्र 2020-21 के लिए गठित हिंदी साहित्य सभा की कार्यकारिणी की घोषणा की. आयोजन में विभाग के अभय रंजन, हरींद्र कुमार और विमलेन्दु तीर्थंकर सहित बड़ी संख्या में विद्यार्थी उपस्थित थे. साथ ही विभाग के पूर्व विद्यार्थी तथा अन्य साहित्यप्रेमी भी आयोजन में शामिल हुए. सभा के महासचिव प्रखर दीक्षित ने आभार व्यक्त किया.

ज़बाने यार मनतुर्की का मुंबई में विमोचन

पिछली सदी के सातवें दशक की लोकप्रिय सिने तारिका साधना के जीवन पर आधारित किताब 'ज़बाने यार मनतुर्की' का लोकार्पण अभिनेत्री के जन्मदिन के अवसर पर धूमधाम से हुआ. जयपुर के बोधि प्रकाशन से प्रकाशित इस किताब के लेखक प्रबोध कुमार गोविल हैं. ये समारोह लोखंडवाला, अंधेरी स्थित एक सभागृह में होना था किन्तु पूर्व राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी के देहावसान पर घोषित राष्ट्रीय शोक के चलते अनूठे तरीक़े से ऑनलाइन संपन्न किया गया. कार्यक्रम का संयोजन व संचालन अभिलाष अवस्थी ने किया. इस अवसर पर समारोह के मुख्य अतिथि प्रख्यात अभिनेता रजा मुराद थे. कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री आनंद मनवानी ने की. अन्य विशिष्ट अतिथियों में सिने अभिनेत्री सिमरन आहूजा, डॉ राम जवाहरानी, युवा लेखक मयंक पांडेय, अशोक मनवानी थे. साधना के बचपन की भूमिका निभाने वाली अभिनेत्री के साथ साथ अन्य कलाकारों ने भी कार्यक्रम में शिरकत की. कार्यक्रम का तकनीकी संयोजन चंद्रपाल सिंह ने किया. इस अवसर पर साधना पर फिल्माए गए कई सदाबहार गीत भी प्रस्तुत किए गए. श्री रज़ा मुराद ने साधना जी के व्यक्तित्व और उनके करोड़ों दर्शकों पर उनके साम्राज्य का ज़िक्र किया.

फ़िराक़ गोरखपुरी के जन्मदिवस की पूर्व संध्या पर वेबिनार

फ़िराक़ गोरखपुरी जयंती की पूर्व संध्या पर साहित्यिक संस्था 'गुफ्तगू' द्वारा आयोजित वेबिनार प्रयागराज में आयोजित किया गया. मशहूर कथाकार ममता कालिया ने कहा कि रघुपति सहाय 'फ़िराक़' ने अपनी उर्दू ज़बान और शायरी से सिद्ध कर दिया कि भाषा का मज़हब से कोई रिश्ता नहीं होता.' मशहूर फिल्म गीतकार इब्राहीम अश्क ने कहा कि फ़िराक़ गोरखपुरी उस अहद के शायर हैं जब ग़ज़ल जमाल-ए-यार की जुल्फ़ों में उलझकर रह गई थी. ऐसे वक्त में फ़िराक़ ने अहम कारनामा ये किया कि ग़ज़ल को मानी और मफहूम अता कर उसको गहराई और संजीदगी के साथ आला अदब के मैयार तक पहुंचाया. प्रो. अली अहमद फ़ातमी ने कहा कि उर्दू शायरी में फ़िराक़ की विशिष्ट पहचान यह समझता हूं कि उन्होंने उर्दू क्लासिकल पोएट्री को खूब पढ़ा था. खासतौर से वो मीर के बहुत आशिक़ थे और उन्होंने मीर का लहज़ा और अंदाज़ वगैरह खूब अपनाया.

बोधकथा

सबसे गरीब

राजाओं के ज़माने की बात है. एक राजा अपने शाही रथ पर जा रहा था. उसने देखा आगे-आगे चल रहे घुड़सवार ने एक थैली रास्ते में फेंक दी. राजा ने थैली उठवायी. पता चला उसमें अशर्फियां थीं. रथ की गति तेज़ कर राजा उसके पास पहुंचा और अशर्फियां फेंकने का कारण पूछा.

घुड़सवार ने बताया, आपके लिए फेंकी हैं. मेरे पास ज़रूरत से ज़्यादा थीं, और मैं किसी गरीब को देना चाहता था, सो आपको दे दीं.

'मैं तुम्हें गरीब दिखता हूं,' राजा ने हैरान होकर पूछा.

घुड़सवर बोला, जो तृप्त नहीं है, जिसकी लालसाएं बड़ी हुई हैं, वह गरीब ही है. कोई भिखारी मुझे ऐसा नहीं लगा, आप लगे, क्योंकि आप राज्य-विस्तार और अपनी ताकत बढ़ा के लालच में फंसे हुए हो.

यह सुनकर राजा निरुत्तर हो गया.

भवन्स नवनीत

अगला अंक

आते हैं जीवन में ऐसे क्षण
जब सब तरफ
अंधेरा घिरता दिखता है
ऐसे ही क्षणों में
परीक्षा होती है
मन-मस्तिष्क के उजालों की

आइए,
उम्मीदों के दीये जलाएं

दीपावली के उपलक्ष्य में
'नवनीत' की विशेष पहल
और वह सबकुछ तो है ही
जो 'नवनीत' को आपके लिए
ज़रूरी बनाता है.

नवम्बर 2020

Printed and Published by P.V. Sankarankutty on behalf of Bharatiya Vidya Bhavan, printed at Maoolee Prints & Arts, Gala No. 9/A, Ground Floor, Byculla Service Industrial Estate, D.K. Cross Road, Byculla (East), Mumbai - 400 027 and published for Bharatiya Vidya Bhavan, Plot No. 33/35, Gr. + 4 Floor, K.M. Munshi Marg, Chowpatty, Mumbai - 400 007. **Editor : Vishwanath Sachdev**

BHAVAN'S BOOK UNIVERSITY

Just Released

MOHANDAS KARAMCHAND GANDHI

150th Birth Anniversary Edition

MRINALINI SARABHAI

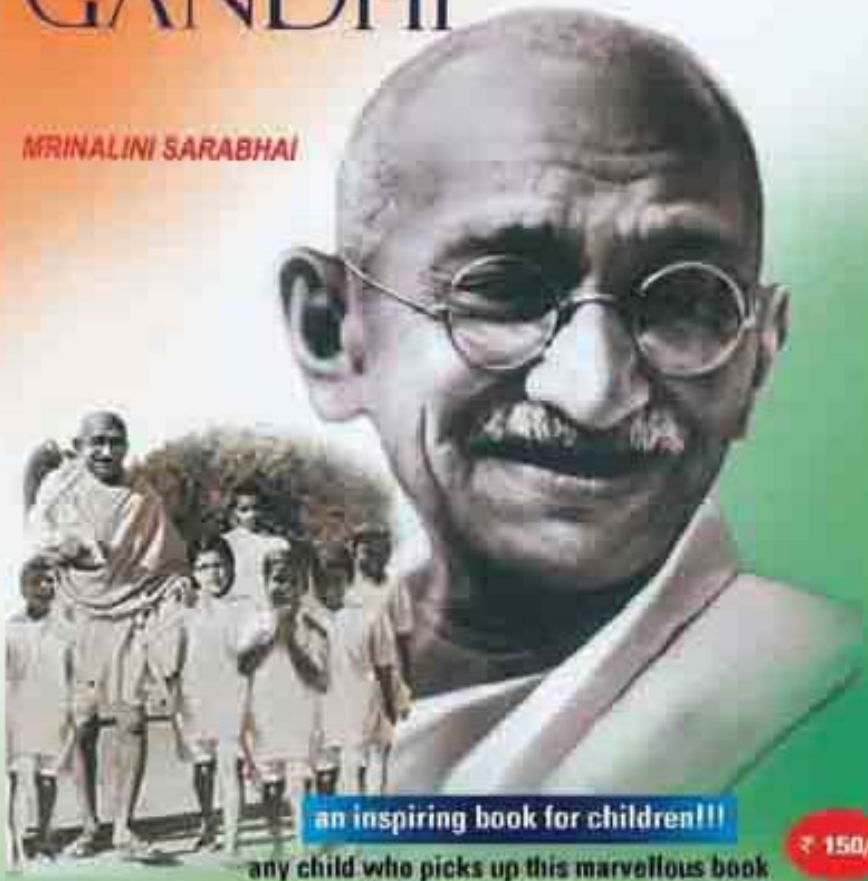

an inspiring book for children!!!

any child who picks up this marvellous book to read will be impelled to work for peace

₹ 150/-

Postage Extra

For copies, please contact:
BHARATIYA VIDYA BHAVAN Publication Division
505, Sane Guruji Marg, Gora Gandhi Compound, Tardeo, Mumbai 400 034
Ph.: 23530916/23514466/23519808 (Direct) Fax: 23520385
E-mail: pvsankarankutty@gmail.com or pvsankarankutty@bhavans.info
Website: www.bhavans.info
*Postage Extra

Total Page 148 Date of Publication : 23rd of every previous month
RNI. : MAHHIN/2015/62469 Registration No. : MCW/330/2018-20
Posted on Mumbai Patrika Channel Sorting Office, Mumbai - 400001
on 27th and 28th of every previous month.

हम आपके विदेशी व्यापार को बढ़ावा देते हैं।...

प्रगति निरंतर दूरदृष्टि का परिणाम होती है। इंडिया एक्ज़िम बैंक में हम इसी विचार को जीते हैं। पिछले 3 दशकों में हमने भारत के विदेशी कारोबार के लिए नई संभावनाओं के द्वार खोले हैं। हम निर्यातों के वित्तपोषण, संभावित खरीदार तलाशने, शिपमेंट को सुगम बनाने, भारतीय उत्पादों को विदेशों में बढ़ावा देने और विदेश व्यापार में कदम रख रहे लोगों को प्रशिक्षित करने जैसे हर कदम पर साथ खड़े रहे हैं। हम भारतीय प्रगति गाथा को आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध हैं और नई उड़ान भरने को तैयार हैं।

इंडिया एक्ज़िम बैंक

www.eximbankindia.in | www.eximmitra.in

हमें यहाँ फॉलो करें: